परम पूज्य गुरुदेव के जीवन कुछ महत्वपूर्ण संस्मरण

चेतना की शिखर यात्रा 1

बालक श्रीराम का कठिया बाबा से साक्षात्कार :

पिताश्री के श्राद्ध कर्म के बाद एक दिन श्री राम ने ताईजी से कहा, “माँ अगर मैं आपको वचन दूँ कि वापस आ जाऊँगा, तो क्या आप मुझे मथुरा जाने की अनुमति देंगी?” जिस तरह अनुमति मांगी गई थी, इंकार का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता था।ताईजी ने सहर्ष अनुमति दी लेकिन इतना अवश्य पूछा कि कितने दिन में वापस लौटोगे। श्रीराम बोले यही कोई 8-10 दिन में वापिस आ जाऊंगा।

उस समय, 1923 में आज से लगभग 100 वर्ष पूर्व यातायात के पर्याप्त साधन नहीं थे। आँवलखेड़ा से मथुरा आने-जाने में तीन-चार दिन लग जाते। मात्र बारह वर्ष की अबोध आयु का विचारआते ही एक बार तो ताईजी का मन हुआ कि मना कर दें लेकिन फिर सोचा कि बेटे का मन टूट जायेगा। ताईजी ने किसी को साथ ले जाने के लिए कहा लेकिन श्रीराम अकेले जाना चाहते थे। उन्होंने वैसा ही व्यक्त किया और अनुमति मिल गई। अगले दिन तीन-चार

जोड़ी कपड़े और ओढ़ने-बिछाने के लिए दरी, चादर के अलावा आने-जाने, रहने आदि के लिए खर्च का इंतजाम कर दिया। गाड़ी, घोड़े और रेल से यात्रा करते हुए श्रीराम दूसरे दिन मथुरा पहुंचे। वहाँ कुछ रिश्तेदार रहते थे लेकिन उनके घर न जाकर "श्याम जी की बगीची" में पड़ाव डाला। द्वारकाधीश के दर्शन कर विश्राम घाट आदि होते हुए श्रीराम वृंदावन मार्ग पर स्थित एक बगीची में आ गए। छोटा सा कुआँ जिसे वहाँ कुइया कहा जाता था, नहाने और विश्राम करने की सुविधा के साथ पास ही बने दो-चार खुले-खुले से कमरे वाली बगीचियाँ मथुरा वृंदावन के रास्ते में थीं। ब्रज क्षेत्र में इस तरह की बगीचियों की भरमार रही है। संपन्न लोग यहाँ शाम का समय बिताया करते थे। इन जगहों पर कुछ पेड़ और फूलों के पौधे भी लगे होते थे। सब मिल कर मनोरम वातावरण बना देते। कुइया के पास किसी देवी-देवता की मूर्ति भी होती है। मूर्ति प्रायः हनुमान की हुआ करती लेकिन कहीं कहीं राधा-कृष्ण, दुर्गा या किन्हीं संत-महात्माओं की भी होती।

जिस बगीची में श्रीराम ठहरे वहाँ कोई "देवी प्रतिमा" लगी थी। नियमित आने जाने वालों से पूछने पर कि यह प्रतिमा किस देवी की है तो कोई भी स्पष्ट उत्तर न मिला। कोई दुर्गा की तो कोई लक्ष्मी,राधा,सीता आदि की बता कर रह गए लेकिन श्रीराम के ह्रदय को यह प्रतिमा छू सी गयी।

श्रीराम इस बगीची में लगभग एक सप्ताह रहे। प्रातः स्नान करके निकल जाते और तीसरे पहर लौटते। मथुरा-वृंदावन में जगह-जगह भंडारे चलते हैं। आज भी बहुत से लोग भंडारा खाकर गुज़ारा चला लेते हैं। श्रीराम इन आश्रमों में तो जाते लेकिन भंडारों में उन्होंने कभी कोई रुचि नहीं ली। आंवलखेड़ा से चलते हुए ताई ने जो सत्तू और भुना हुआ दलिया बाँधा था, उसी का आहार करते। बदलाव के लिए द्वारकाधीश मंदिर के पास बनी फूलचंद पेड़े वाले की दूकान या चौक से कुछ हल्का-फुल्का खाद्य खरीद लेते थे। बाकी समय भ्रमण में व्यतीत करते। भ्रमण में मंदिर आदि स्थानों पर तो एकाध बार ही गए। कुंज,आश्रम और यमुना के किनारे ही उनका समय ज्यादा बीता। ऐसा लग रहा था जैसे कुछ खोज रहे हों।

बगीची में जितनी देर रहते, देवी-प्रतिमा पर बार-बार ध्यान देते, उठकर उसे देखने जाते और जो भी आता जाता मिलता उससे पूछते, “यह प्रतिमा किसकी है?” एक दिन बहुत ही विचित्र ढंग से श्रीराम को अपने जिज्ञासाभरे प्रश्न का उत्तर मिला।

आइये ज़रा इस विलक्षणता का analysis करें:

हुआ यह कि कोई संत महात्मा बगीची में आए। उनका नाम तो बाबा रामदास था लेकिन लोग उन्हें काठिया बाबा कहते थे। उन्होंने कौपीन (लंगोट) की जगह लकड़ी का बनाया लंगोट जैसा आवरण पहन रखा था। बाबा ने उसे खास ढंग से तैयार कराया था कि वह कमर में अटका रहता था और जरूरत पड़ने पर उतारा या ढीला भी किया जा सकता था। काठ का कौपीन पहनने के कारण ही लोग उन्हें काठिया बाबा कहते थे। काठिया बाबा वृंदावन में रहते थे लेकिन उन्होंने अपना कोई आश्रम नहीं बनाया था। उस दिन वह सुबह पांच बजे बगीची में आये और 'जय अंबे' का उद्घोष करना आरम्भ कर दिया। कुइया पर स्नान कर बाबा पास ही स्थित

माँ भगवती के दर्शन के लिए गए। देर तक बैठे रहे। पूजा पाठ तो करते दिखाई नहीं दिए, स्पष्ट था कि बाबा ध्यान कर रहे थे। श्रीराम बाबा को कौतूहल से देख रहे थे। ध्यान करके उठे तो लपक कर उनके चरण छूने लगे। काठिया बाबा 'न बाबा न' कहते हुए दस कदम पीछे हट गए और सहज होकर बोले, “कहां से आए हो?” श्रीराम ने अपना सामान्य परिचय दिया। बाबा ने पूछा, “कहाँ जाना है?” श्रीराम ने उत्तर दिया,

“गंतव्य तो सभी का एक ही है लेकिन जाना कैसे है यह किसी को पता नहीं है।”

उत्तर सुनकर काठिया बाबा के चेहरे पर प्रसन्नता फूट पड़ी। बाबा कहने लगे,

“लेकिन तुम तो अपनी दिशा में ठीक जा रहे हो, फिर कैसे कहते हो कि मार्ग मालूम नहीं है ?”

दोनों में चर्चा छिड़ गई, बहुत देर तक बातचीत चलती रही। काठिया बाबा ने अपनी साधना और अब तक की यात्रा के बारे में

विस्तार से बताया। उन्हीं बाबा से यह समाधान हुआ कि देवी प्रतिमा माँ गायत्री की है। 300-400 वर्ष पूर्व यहाँ एक आश्रम हुआ करता था जिसमें एक संन्यासी के सान्निध्य में बीस-पच्चीस साधक रहते थे, वे गायत्री जप करते और वेद शास्त्रों के अध्ययन में निरत रहते। बाबा ने ही बताया कि सैकड़ों वर्ष पूर्व इस स्थान पर भागवत प्रवचन भी हुआ करते थे।

अपने बारे में बाबा ने जो बताया उसके अनुसार बचपन में सहज ही प्रेरणा उठी कि गायत्री मंत्र का जप किया जाए। यज्ञोपवीत के समय मंत्र दीक्षा ले ही रखी थी, साधना शुरु हुई। बाबा का जन्म कहाँ हुआ या उनके परिवार में कौन है, इसके बारे में कुछ नहीं बताया। संन्यासी के लिए अपने पूर्व आश्रम का परिचय देना वर्जित है। साधक जब संन्यास लेता है, तो प्रतीकात्मक रूप से उसकी अंत्येष्टि भी कर दी जाती है। विधिवत उसकी अर्थी सजाई जाती है, उसे चिता पर लिटाया जाता है और आग लगाने के बाद वापस उतार लिया जाता है। इन क्रियाओं का उद्देश्य यह बोध जगाना है कि अब नया जन्म हो रहा है। पिछले या अब तक के लौकिक जीवन

को भूल जाना ही श्रेयस्कर है। वह जीवन समाप्त हुआ। मृत्यु जिस तरह समूचा व्यक्तित्व, पहचान और उपलब्धियाँ छीन लेती है, उसी तरह अब तक का जीवन भी समाप्त हुआ समझा जाता है ।

माँ भगवती से साक्षात्कार :

काठिया बाबा ने इतना ही बताया कि विद्या पढ़ते थे। बाद में घर वापस आये तो इच्छा क्षण-प्रतिक्षण बलवती होने लगी कि गायत्री अनुष्ठान किया जाए। घर के पास ही एक बगीचा था। बगीचे में एक बड़ा वटवृक्ष था। उसके नीचे आसन जमाने की ठानी और कवच आदि विधि-विधान के साथ अनुष्ठान आरंभ कर दिया। विधि-विधान गुरु के घर मे भलीभाँति सीखा हुआ था। कोई कठिनाई नहीं हुई। अनुष्ठान का एक भाग पूरा होते-होते प्रेरणा उठी कि शेष जप ज्वालामुखी जाकर पूरा किया जाए। प्रेरणा का स्वरूप ऐसा था जैसे कोई सामने खड़ा होकर कह रहा हो या वटवृक्ष से आवाज आ रही हो। पूर्व आश्रम में बाबा का जहाँ निवास था, वहाँ से ज्वालामुखी लगभग 70 किलोमीटर दूर था। वटवृक्ष के नीचे से

उठकर बाबा घर नहीं गए। सीधे ज्वालामुखी की ओर रवाना हो गए। बाबा के साथ उनका एक भतीजा भी जप-तप किया करता था। वह भी पीछे-पीछे चल दिया। दोनों अविराम चलते रहे। रास्ते में एक महात्मा के दर्शन हुए। किसी भूमिका या परिचय का आदान प्रदान किए बिना उन्होंने पूछा वैराग्य लोगे? काठिया बाबा ने भी आगा-पीछा नहीं सोचा और कह दिया हाँ । वैराग्य की तैयारी चलने लगी, भतीजे ने रोका, रोया और हठ भी किया कि संन्यासी मत बनो। कोई असर नहीं हुआ। वह उलटे पाँव दौड़ा गया और अपने दादाजी को बुला लाया। काठिया बाबा के पिताजी आए लेकिन तब तक देर हो गई थी। उनके हस्तक्षेप जैसी स्थिति रह नहीं पाई थी। पिताजी ने आकर देखा तो बेटा संन्यासी हो चुका था। वे दुःखी हुए। पुत्र को मनाने लगे। घर वापस चलने के लिए कहा। बेटे ने कहा कि अब वैराग्य धारण किया जा चुका है। इस आश्रम से वापसी नहीं होती। पिता ने समझाया कि किसने देखा है , मुंडन ही तो हुआ है। गाँव चलकर कोई दूसरी वजह बता देंगे, किसने देखा है कि तुम संन्यासी हो गए। काठिया बाबा पर तनिक

भी असर नहीं हुआ। नए आश्रम के अनुसार उन्होंने पिता को पहचानने से भी मना कर दिया। थक-हारकर वे वापस चले गए। जहाँ संन्यास लिया था, वहीं वटवृक्ष के नीचे काठिया बाबा ने आसन लगाया। देर रात तक ध्यान करते रहे। आधी रात बीत गई। कुछ देर सो गए और सुबह उठकर फिर जप ध्यान में लग गए। ध्यान समाधि के इसी क्रम में भगवती का साक्षात्कार हुआ। काठिया बाबा ने बताया कि माँ ने वरदान माँगने के लिए कहा। अपनी कोई कामना शेष नहीं रह गई थी। कह दिया कि वैराग्य ले चुका हूँ। अब कोई कामना नहीं रही। इसका उदय ही न हो, ऐसा आशीर्वाद दीजिए।

काठिया बाबा को कई तरह की सिद्धियाँ प्राप्त थीं। वह जो कह देते, वही हो जाता था।

काठिया बाबा ने बगीची में ठहरे श्रीराम को गायत्री माँ की प्रतिमा वाले स्थान के संबंध में विलक्षण बातें बताईं। उनमें एक तो यही थी कि त्रेता युग में इसी जगह पर दुर्वासा मुनि ने गायत्री साधना की

थी। कंस का वध करने के लिए जाते हुए श्रीकृष्ण और बलराम ने यहाँ संध्या-वंदन किया था। समय-समय पर हुए यज्ञ अनुष्ठानों के बारे में भी बताया और अपने साथ चलने के लिए कहा। यही वह स्थान है जहाँ 1953 में गुरुदेव के द्वारा तपोभूमि मथुरा की स्थापना हुई। इसका डिटेल्ड विवरण आने वाले लेखों में देने की योजना है।

बूटी सिद्ध महाराज से भेंट :

श्रीराम उनके साथ चल दिए। बगीची से करीब तीन किलोमीटर दूर एक टीले के पास जाकर वे रुक गए। वयोवृद्ध लोग उस टीले को "गायत्री टीले" के नाम से जानते हैं। बाबा श्रीराम को टीले के ऊपर ले गए। वहाँ एक कुटिया में वयोवृद्ध संत लेटे हुए थे। दोनों ने उन्हें प्रणाम किया। इन संत का नाम बूटी सिद्ध महाराज था। तीस-चालीस वर्ष से उन्होंने मौन व्रत लिया हुआ था। किसी से बोलते नहीं थे। जरूरत होती तो इशारों से बात कर लेते। कभी कभार लिखकर भी अपनी बात कह देते। वे अलवर के रहने वाले थे और

दसियों वर्ष से यहाँ आकर रहते थे। काठिया बाबा ने ही बूटी सिद्ध महाराज के बारे में बताया कि उन्होंने एक करोड़ जप किया है। निष्ठापूर्वक किए गए जप से उन्हें गायत्री का अनुग्रह मिला और आत्म साक्षात्कार हो गया। सिद्धि के बाद उन्होंने टीले पर गायत्री की एक प्रतिमा स्थापित की और मथुरा के चतुर्वेदी ब्राह्मणों का भंडारा किया। कुटिया में गायत्री की स्थापना के बाद वह अपने ढंग का भव्य और अद्वितीय आयोजन था। इसके लिए आवश्यक साधनों की व्यवस्था कहाँ से हुई, इसके बारे में बूटी सिद्ध बाबा के अलावा किसी को कुछ नहीं मालूम । लोगों का मानना है कि बूटी सिद्ध बाबा के पास कोई "विलक्षण यंत्र" है। उसकी आराधना करते ही साधन स्वयं ही प्रकट हो जाते हैं। बाबा के पास दुःखी, संतप्त और रोगी लोग भी आया करते थे। बाबा कुछ कहते तो नहीं थे, केवल हाथ उठाकर ही आशीर्वाद देते थे। उनके हाथ का उठना ही संकट का निवारण होना मान लिया जाता था और कई लोगों के संकट सचमुच में दूर हो भी जाते थे। धौलपुर और अलवर रियासत के राजा उनके पास आया करते थे। बूटी बाबा स्वयं कहीं नहीं जाते

थे। एकांत सेवन के लिए जाना होता,तो कुटिया के पास बनी गुफा में चले जाते थे। काठिया बाबा ने बूटी सिद्ध महाराज से श्रीराम का परिचय कराया। उनकी साधना और निष्ठा से बूटी सिद्ध बाबा ने अभिभूत हो "दोनों हाथ उठाकर आशीष दिया और फिर गले से भी लगा लिया।" काठिया बाबा इसके बाद अपनी राह चले गए और श्रीराम वापस बगीची में आ गए। इस भेंट के कुछ दिन बाद बूटी सिद्ध बाबा ने अपना शरीर छोड़ दिया।

इस बगीची में ही किसी श्रद्धालु से सुना था कि वृंदावन में यमुना के पार एक "संत" आए हैं। वे यमुना और गंगा का किनारा छोड़कर कहीं नहीं जाते। किनारे पर एक मचान (प्लेटफॉर्म) बनाकर रहते हैं। वहीं बैठकर लोगों से बात करते हैं। कभी कभार मचान के पास जमीन पर बनी झोंपड़ी में भी रहते हैं। साधना उपासना के बाद थोड़ा-बहुत समय बचता है, वह जनसंपर्क में लगाते हैं। उन सब के बारे में अन्य लोगों से तरह-तरह की बातें सुनी। उन्हें भूख-प्यास नहीं लगती। कभी किसी से कुछ आहार लेते नहीं देखा। उन्हें शौच आदि के लिए भी नहीं जाना पड़ता। भूख-प्यास पर विजय प्राप्त

कर लेने से काफी समय बच जाता है। उस समय का उपयोग ध्यान-धारणा में करते हैं। उन संत की आयु के बारे में भी विचित्र बातें कहीं जाती थी। कोई कहता है कि वे दो सौ वर्ष के हैं, किसी के अनुसार छह-सात सौ साल के है। हमारे बाबा या परबाबा ने भी उन्हें इसी अवस्था में देखा था। शरीर और स्वास्थ्य के अनुसार वे तीस-पैतीस साल से ज्यादा के नहीं लगते थे। लोगों का कहना था कि योग की सिद्धियों के आधार पर वे अपने आपको इस योग्य बनाए रखते हैं। यह भी कि वे जब चाहे अपना कायाकल्प कर लेते हैं। उसी शरीर को नया कर लेते हैं या चाहें तो पुराने शरीर का त्याग कर वैसे ही रूप-रंग का नया शरीर रच लेते हैं। श्रीराम इन बातों को कौतूहल के साथ सुनते। सुनकर कोई प्रतिक्रिया नहीं करते। उनके मन में सिर्फ उत्सुकता जगी और वृंदावन की राह पकड़ी। गर्मी का मौसम था, यमुना तब आज की तरह सूखी नहीं थी। काफी पानी बहता था। आजकल तो मई, जून के महीनों में इतनी सूख जाती है कि उसे पैदल चल कर पार किया जा सकता है, लेकिन तब बहुत पानी बहा करता था।

प्रणाम है बच्चा :

यमुना पार करने के लिए नाव चलती थीं। श्रीराम उन संत का पता पूछते तलाशते किनारे तक पहुँचे। नाव से नदी पार की और संत के मचान तक पहुँचे। दोपहर का समय था । संत मचान पर बैठे थे। नीचे चार-पाँच लोग खड़े थे। उन्होंने दो सौ मीटर से ही श्रीराम को देख लिया और स्नेह से पुकारा, "आओ ऋषि कुमार,तुम्हारा ही इंतजार था बच्चा।" बाबा की पुकार सुनकर श्रीराम ने पीछे मुड़कर देखा। उन्हें लगा कि शायद किसी और को बुला रहे हैं। बाबा ने फिर वही पुकार की और कहा, "हम तुम्हें ही कह रहे बालक श्रीराम।" नाम सुन कर संशय दूर हो गया। श्रीराम के मन में आगे बढ़ने में अभी तक जो झिझक थी, वह दूर हो गई। वह स्वाभाविक गति से कदम बढ़ाते हुए सीधे मचान के पास पहुंचे और बाबा को प्रणाम किया। उन्होंने दोनों हाथ उठाए और कहा, "तुम्हें भी प्रणाम है बच्चा।" यह सुनकर वहाँ खड़े दूसरे लोग चौंक कर देखने लगे। वहाँ आने वाले श्रद्धालुओं को बाबा प्रणाम का उत्तर 'आशीर्वाद है

बच्चा' या 'सुखी रहो बच्चा' कहकर देते थे। यहाँ बारह-तेरह साल के किशोर को प्रणाम का उत्तर प्रणाम से दे रहे हैं। बाबा ने कुछ समय के बाद जो कहा उससे उन लोगों का विस्मय थोड़ा छटा । बाबा ने कहा, "तुम्हारे आने की खबर लग गई थी बच्चा। उन दैवी आत्माओं से ही आभास हुआ कि तुम आ रहे हो। बहुत प्रसन्नता हुई।"

श्रीराम चुपचाप सुनते रहे, "गायत्री मंत्र का पाठ करो बच्चा।" कहकर बाबा खुद गायत्री मंत्र पढ़ने लगे। वे वैष्णव संत थे और सभी श्रद्धालुओं से द्वादश अक्षर मंत्र' ॐ नमः भगवते वासुदेवाय' मंत्र का उच्चारण कराते थे। बाबा ने गायत्री मंत्र का पाठ करने के बाद कहा:

"तुम सावित्री सिद्ध हो बच्चा। तुम्हें बड़े काम करने हैं। हिमालय की आत्माएँ हैं न बच्चा, वहाँ बड़े योगी-मुनि रहते हैं । वहाँ की गुफाओं में वास करते हैं । पता नहीं कितने सौ सालों से वहाँ तप कर रहे हैं। उनका आशीर्वाद तुम्हें मिला है। वे आत्माएँ तुम्हारा बहुत सहयोग करेंगी।"

बाबा इससे आगे बहुत कुछ कहते रहे। उनके प्रवचन में हिमालय के रहस्य और सिद्ध लोक की सांकेतिक जानकारी थी। बाबा का भाषा ज्ञान कमजोर था। वे सधुक्कड़ी हिंदी बोलते थे। शब्दों के अनुसार अर्थ से उनका मंतव्य समझने में कोशिश करें तो शायद भ्रमित हो जाए। उनके भाव को ही समझा जा सकता था।

श्रीराम ने पूछा,

"बाबा आपके बारे में कई बातें सुनने को मिलती हैं,आपके चमत्कारों का क्या रहस्य है?" बाबा ने कहा, "भगवान् द्वारा रची गई इस "दुनिया" से बड़ कर कोई चमत्कार नहीं है। हम नहीं जानते बच्चा कि लोग हमारे बारे में क्या कहते हैं? यहाँ आने वाले सभी भक्तों के लिए हम दुआ मनाते हैं। फलवती हो जाए तो ईश्वर की कृपा है, नहीं हो तो भगवान की इच्छा। उसकी इच्छा के बिना कुछ भी संभव नहीं होता बच्चा।" फिर उन्होंने अपनी आयु के बारे में कहा, "शरीर मरणधर्मा (नश्वर) है, इसकी उम्र का क्या पूछना। गंगा यमुना के बीच जिस गाँव में इस शरीर का जन्म हुआ, वहाँ

लोग तिथि तारीख लिखकर नहीं रखते थे। वहाँ के लोग पढ़े-लिखे नहीं हैं बच्चा। इसीलिए पता नहीं शरीर कितने बरस का हुआ।"

स्पष्ट हुआ कि इस उत्तर के कारण ही लोग बाबा की आयु के संबंध में अनुमान लगाते थे। वह अनुमान स्वाभाविक से ज्यादा ही रहता होगा। फिर कहने लगे,

"तुम्हारी उम्र के थे तभी घर छोड़ दिया। नर्मदा के किनारे काफी समय रहे। द्वारका, रामेश्वर, पुरी और बद्रीनाथ जी गए, अन्य तीर्थों में भी गए। फिर गंगा मइया का किनारा चुन लिया।माँ ने कहा तो कभी यमुना मइया के तट पर चले आए। अब घूमना-फिरना बंद।" बाबा इसके बाद थोड़ा रुके और फिर बोले, "लेकिन विधि ने तुम्हारे लिए कुछ और ही विधान रचा है। तुम्हारे गुरुदेव समय पर तुम्हें सब कुछ बतायेंगे।"

श्रीराम ने यह पूछना जरूरी नहीं समझा कि गुरुदेव से हमारी भेंट कब होगी। वह बाबा के उपदेश या संकेत सुनकर उसी शाम लौट आए।

निधिवन के रास विहार का रहस्य गुरुदेव से जानें

देवरहा बाबा के संकेत सुनकर किशोर श्रीराम उसी शाम लौट आए। रात वृंदावन में रुके। वहाँ की एक बगीची के बारे में सुन रखा था कि राधा और कृष्ण वहाँ नित्य रास करते हैं। रास के समय वे सशरीर विश्राम भी करते हैं। उस समय बगीची में कोई नहीं जाता। अगर कोई चला जाए तो अनर्थ हो जाता है। श्रीराम के मन में रह-रहकर शंका उठती कि बगीची में कोई रह जाए और राधाकृष्ण के दर्शन कर ले तो अनर्थ क्यों हो जाता है? भगवान् के दर्शन जिसे हो जाए,उसका तो कल्याण हो जाना चाहिए। किशोर मन ने इस शंका का निवारण करने की ठानी।

आइये देखें कैसे हुआ निवारण :

बगीची की ओर जाते हुए एक वैष्णव साधु गोपालदास मिले। उनसे राधा-कृष्ण के नित्य विहार की बात पूछी। साधु गोपालदास ने कहा, "

विहार तो नित्य ही चल रहा है। यह जगत् उसका ही तो है। वृंदावन के कणकण में वही नाच रहा है। पूरा विश्व उसी का नर्तन है यहाँ वह ज्यादा प्रत्यक्ष है क्योंकि साधकों का चित्त यहाँ ज्यादा ग्रहणशील हो जाता है।”

साधु की बातें अटपटी लग रही थी। श्रीराम ने बीच में ही रोककर पूछा, “क्या सचमुच बगीची में रात को राधा-कृष्ण सशरीर आते हैं ?” साधु हँसा। श्रीराम ने फिर पूछा कि अगर वे भगवान् हैं, तो उनके दर्शन से अनर्थ क्यों हो जाता है?” इतना कहते ही साधु ने मंदिर की सीढ़ियों की ओर इशारा किया और कहा:

श्रीकृष्ण वह जा रहे हैं, देखो ! उनके साथ राधा रानी भी हैं। श्रीराम ने सीढ़ियों की तरफ देखा। श्याम वर्ण श्रीकृष्ण और गौरांग श्री राधा मंदिर की सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे। वे पलट कर साधु तथा उनकी और भी देख रहे थे। कुछ क्षण के लिए आस-पास के लोग, दुकानें, मकान, गलियाँ और वहाँ से हो रही चहल- पहल आदि सभी कुछ का लोप हो गया। राधा और कृष्ण के विग्रह ही रह गए।

कुछ क्षण के लिए सुधबुध जाती रही। भाव समाधि की अवस्था आ गई। फिर सब कुछ सामान्य था।

साधु गोपालदास ने कहा, “इस तरह के दृश्य अपने भीतर बैठे भगवान् के ही बाहर आने वाले रूप हैं। साधना के प्रगाढ़ होते ही इस तरह की अनूभूति होने लगती है लेकिन यहीं नहीं ठहरना है। साधना निरंतर जारी रहनी चाहिए।”

साधु ने ही स्पष्ट किया:

“भगवान् का दर्शन किसी भी प्रकार अनिष्टकारी नहीं होता। जिस बगीची में राधा-कृण के आने और रास रचने की बात कही जाती है, उसमें “सत्य कम, गलतफहमी ज्यादा” है। इस तरह बगीची की महिमा गायी जाती है। उस बहाने लोगों से पैसा ऐंठा जाता है । अनिष्ट की आशंका फैलाने से लोग आतंकित होते हैं और दिन में वहाँ जाकर चढ़ावा चढ़ाते हैं। सच्चाई परखना हो तो एक रात उस बगीची में घुस कर देखो।”

साधु गोपालदास ने रहस्य खोल दिया। स्वयं ही अनुभव करने के लिए भी कहा।

श्रीराम उस बगीची की तरफ बढ़ गए। शाम ढलने के लिए थोड़ी देर पहले बगीची में गए। द्वार बंद होने से पहले बगीची की छान-बीन की और एक झाड़ी की ओट में छुप गए। झाड़ी की ओट से निकलकर उस मंदिरनुमा कमरे के पास तक गए जहाँ राधा कृष्ण के विश्राम करने की बात का प्रचार किया जाता था। उस कमरे से करीब बीस फीट दूर एक झाड़ी के सहारे बैठ गए। कमरे का द्वार खुला हुआ था। शाम ढलने लगी। रात का दूसरा पहर शुरु हुआ। वातावरण बहुत शांत था। झाड़ियों में छुपे पक्षियों और जीवों की आवाजें आना बंद होने लगी थी। इक्का-दुक्का किसी बंदर की चिंचियाहट सुनाई देती थी। रात धीरे-धीरे गहराने लगी। आधी रात से ज़्यादा समय बीत गया। श्रीराम टकटकी बाँधे उस कमरे की ओर देख रहे थे। कब कोई आए। इंतजार करते हुए वह थकने से लगे। आँखों में नींद भरने लगी, उसे दूर भगाने के लिए बगीची में ही बनी कुइयां के पास गए और पास पड़ी बाल्टी से थोड़ा पानी

खींचा, हाथ-मुँह धोए और वापस उसी झाड़ी के पास आकर बैठ गए। पानी खींचने और हाथ-मुँह धोने में थोड़ी आवाज हुई। इसके तुरंत बाद बगीची के बाहर कीर्तन की आवाज़ सुनाई देने लगी। थोड़ी देर में कीर्तन थमा। इस बीच बगीचे के भीतर धुंघरुओं की आवाज आई। छमछम की गूंज ऐसी लहराई जैसे कोई नाच रहा हो। कुछ देर यह आवाज गूंजती रही फिर अपनेआप थम गई। इसके बाद बगीची के बाहर एक बार फिर कीर्तन होने लगा। थोड़ी देर चलते रहने के बाद कीर्तन फिर थम गया। सुबह पांच बजे तक बगीची में कभी बंसी की धुन गूंजती, कभी तबले और हारमोनियम का संगीत सुनाई देता। तीन बार उस कमरे के पास रोशनी भी दिखाई दी। वह रोशनी किसी दीपक के जलने से हो रही थी। दीपक जलाता हुआ व्यक्ति भी दिखाई दिया। पांच-सात मिनट जल कर दीपक इस तरह बुझ गया जैसे किसी ने फूंक मार दी हो। तड़के पाँच बजे दो व्यक्ति कमरे के पास दिखाई दिए। वे अंदर गए और थोड़ी देर बाद वापस चले गए। इसके कुछ देर बाद ही बगीची के बाहर आरती वंदना सुनाई देने लगी। आरती पूरी होने के बाद लोग

आने लगे। 8-10 लोगों के जत्थे में श्रीराम भी शामिल हो गए और उस कमरे तक गए। जत्थे के लोग कमरे में जाकर बहुत ही प्रसन्न थे। बिस्तर की चादर पर सिलवटें पड़ी हुईं थीं जैसे कोई वहाँ सोया हो। तेल की शीशी उठाकर देखा,ढक्कन खुला हुआ था। एक ने कहा- शाम को जितना तेल रखा था उससे कम हो गया है। दूसरे ने कहा- देखो सिंदूर की डिबिया भी खुली है। राधा रानी ने अपना सिंगार किया होगा। तीसरे ने कहा-अरे भगवान् अपना पीतांबर भूल गए। इस तरह आश्चर्य बढ़ा। यह लोग पिछली शाम को ही उस कमरे में होकर गए थे। उस समय तो सब कुछ ठीक था। चादर साफ थी, सिंदूर की डिबिया ठीक से लगी हुई थी, तेल की शीशी पूरी भरी हुई थी। अब की हालत देखकर स्पष्ट लग रहा था कि किसी ने अपने केश संवारे हैं।

पिछली शाम दर्शन करने के बाद यह लोग बगीची के बाहर ही ठहरे थे और वही सुबह के पहले यात्री थे। श्रीराम ने उनका आश्चर्य और इस बीच हुई घटनाओं को देखकर अच्छी तरह अनुभव कर लिया कि "बगीची में राधा-कृष्ण का विहार एक आयोजित नाटक

था।” बीच-बीच में गूंजने वाला संगीत, आवाजें, रोशनी और उस कमरे के आस-पास दिखाई दिए लोग, यह प्रभाव उत्पन्न करने के लिए ही थे कि बगीची में राधा और कृष्ण आए हैं। सुबह पाँच बजे उन्हीं लोगों ने कमरे का नक्शा बदला और बाहर ठहरे यजमानों को जताया कि सचमुच में भगवान् आए थे। यजमानों ने मंदिर में चाँदी के सिक्के चढ़ाए और पेड़ों के भोग- भंडारे के लिए अलग से दक्षिणा दी।

साधु गोपालदास की बात याद आई कि:

“भगवान् सब जगह हैं। जहाँ याद करो, तन्मयता से पुकारो, वहीं प्रकट हो जाते हैं। नहीं पुकारो तो सामने आ जाने पर भी पहचान में नहीं आते।”

पूरे घटनाक्रम को श्रीराम ने शांतिपूर्वक देखा और कोई बिना कोई प्रतिक्रिया व्यक्त किए बगीची से बाहर आ गए। पंडों ने समझा कि यह बालक भी यजमानों के साथ ही आया होगा ।उन्हें क्या पता कि

इस बालक ने उनकी आयोजित नाटकीय दिव्य लीला का सच अपनी आँखों से देख लिया है।

वृंदावन की यात्रा पूरी हुई। मथुरा में एक दिन के लिए उस बगीची में रुके, जहाँ काठिया बाबा से भेंट हुई थी। उस विग्रह के सामने कुछ देर पालथी लगा कर बैठे, जिसे गायत्री का बताया गया था। मन में हिलोरें आने लगीं। लगा जैसे कुछ संकेत मिल रहे हैं, निर्देश आ रहे हैं। समय भागा जा रहा है, श्रीराम बड़े हो रहे हैं। बीस-पचीस-तीस-चालीस साल की उम्र पार कर गए हों । अपनेआप को चालीस की अवस्था का अनुभव करते हुए लग रहा है कि इसी स्थान पर है बहुत से लोग साधना कर रहे हैं, आरती हो रही है, यज्ञ हवन हो रहा है। लोग आ रहे हैं,जा रहे हैं। यह प्रतीति कुछ देर बनी रही फिर तिरोहित हो गई। इसी स्थान पर 1953 में गायत्री तपोभूमि की स्थापना हुई।

संध्या संपन्न कर अगली सुबह द्वारिकाधीश के दर्शन करते हुए आगरा के लिए रवाना हो गए। चलते समय ताई जी के लिए प्रसाद

लेने की बात भी याद रही। आँवलखेड़ा वापस लौटे तो माँ को जैसे आभास हो गया था कि बेटा आने वाला है। वह द्वार पर खड़ी मिली। चिरंजीव ने आकर पाँव छुए और माँ ने आशीर्वाद दिया। कहा कि मेरा लाल अब होशियार हो गया। अब बच्चा नहीं रहा। जिम्मेदारी उठाने लायक हो गया। ठाकुर जी ने मेरी चिंता दूर कर दी है

आँवलखेड़ा लौट आने के बाद जीवन का क्रम सामान्य ढंग से चलने लगा। खेती बाड़ी, पुश्तैनी व्यवसाय और यजमानों का आना-जाना पहले की तरह फिर शुरु हो गया। पिताश्री का अभाव सभी को खलता था। घर के लोगों ने सलाह दी कि श्रीराम को भी उसी काम से लगाया जाए, उठती उम्र है। लेकिन किशोर मन बदलाव की बात सोचता था, ज़्यादती के सामने न झुकने या ज्यादती करने वालों से हर संभव असहयोग करने का नाम ही गाँधी था

दादा गुरु सर्वेश्वरानंद जी के साक्षात्कार पर आधारित लेखों की पृष्ठभूमि।

कबीर जी के सुप्रसिद्ध दोहे "गुरु गोविन्द दोऊ खड़े , काके लागू पाय| बलिहारी गुरु आपने , गोविन्द दियो बताय।" के अनुसार जीवन में कभी ऐसी परिस्थिति आ जाये कि गुरु और गोविन्द (ईश्वर) एक साथ खड़े मिलें तो पहले किसे प्रणाम करना चाहिए। गुरु ने ही गोविन्द से हमारा परिचय कराया है इसलिए गुरु का स्थान गोविन्द से भी ऊँचा है। आज यह दोहा हमें परम पूज्य गुरुदेव के अपने हिमालयवासी गुरु सर्वेश्वरानन्द जी, जिन्हे हम सब दादा गुरु के नाम से जानते हैं, के दिव्य साक्षात्कार की पृष्ठभूमि का स्मरण करा रहा है।

18 जनवरी 1926,वसंत पंचमी का वह पावन दिन था जब ब्रह्म मुहूर्त में दादा गुरु ने 15 वर्षीय बालक श्रीराम की पूजास्थली में आकर दर्शन देकर दिव्य निर्देश दिए थे। आज का लेख आने वाले लेखों के लिए पृष्ठभूमि बनाने के उद्देश्य से लिखा गया है।

पूर्व दिशा में तारों की चमक हलकी-सी फीकी होने लगी थी। अंधेरा कुछ उठता दिखाई दिया और अपने घोंसले में सोए पक्षियों का चहचहाना सुनाई देने लगा। तभी श्रीराम ने अपनी पूजा की कोठरी में आसन बिछाया और प्रातःकालीन संध्या का उपक्रम आरम्भ किया। पवित्रीकरण मन्त्र का उच्चारण किया:

"ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः"

इस मन्त्र का अर्थ है कि यदि कोई अपवित्र है, पवित्र है या किसी अन्य स्थिति में है तो वह पुंडरीकाक्ष (भगवान विष्णु का दूसरा नाम) का स्मरण करता है तो वह अंदर बाहिर दोनों से पवित्र हो जाता है,शुद्ध हो जाता है। पुंडरीकाक्ष का शाब्दिक अर्थ है,कमल जैसी आंखों वाला।

एक पौराणिक कथा के अनुसार एक बार भगवान विष्णु शिवजी की पूजा करने के लिए काशी गए। वहां के मणिकार्णिका घाट पर स्नान कर विष्णु जी ने एक हजार स्वर्ण कमल फूलों से भगवान

शिव की पूजा का संकल्प लिया। भगवान विष्णु जी की आंखों को कमल के समान सुंदर माना जाता है इसीलिए उन्हें कमलनयन और पुण्डरीकाक्ष भी कहा जाता है।

गाँव में वैसे भी लोग जल्दी उठते हैं। गायों का रंभाना, मुर्गे की बांग आदि सुनकर लोगों को अनुमान हो जाता है कि रात का चौथा प्रहर (यानि सूर्योदय से 3-4 घंटे का समय) ढलने लगा है। दिन और रात के 24 घंटों को 8 प्रहरों में बांटा गया है,इस प्रकार एक प्रहर 3-4 घण्टे के लगभग होता है।

सूर्य देवता का रथ पूर्व दिशा में उतरने को तैयार है क्योंकि उसके आगमन की सूचना दूर क्षितिज में हलकी-सी लालिमा के रूप में मिलने लगती है। लोग उठकर कुल्ला करते हैं, खाली पेट पानी पीते हैं और दिन में किए जाने वाले कार्यों के बारे में सोचते हैं । सामान्य लोग जिस समय उठ कर अंगड़ाई लेते हुए यह सब करते थे, उस समय श्रीराम ऋषियुग से चले आ रहे संध्यावंदन का क्रम शुरू कर चुके होते थे। 6-7 वर्ष की आयु से ही सुबह जल्दी उठ जाते और

ध्यान धारणा के अभ्यास में लग जाते थे। मंत्र दीक्षा के बाद इसमें और भी क्रियाएँ जुड़ीं। महामना मालवीय जी ने मंत्र दीक्षा के समय विधि-विधान समझाया था और साथ में यह भी कहा था कि संध्यावंदन दोनों समय होना चाहिए। मालवीय जी के मार्गदर्शन में संध्यावंदन के उपक्रम, स्थान और समय का निर्देश भी था। उनके कहे हुए शब्द स्मृति में हमेशा रहते थे और कुछ महीनों के अभ्यास से तो स्वभाव में ही घुलमिल गए थे। शास्त्रों में संध्या-वंदन के लिए जिन स्थानों को उत्तम बताया गया है, उनमें पुण्य क्षेत्र, नदी तट, पवित्र जलाशय, पर्वत का शिखर, एकान्त बगीचा, देव मंदिर या अपना घर प्रमुख हैं। श्रीराम पहले तो गाँव से बाहर देवमंदिर में बैठकर संध्यावंदन करते थे लेकिन पिताश्री के महाप्रयाण के बाद घर में ही बैठने लगे। विशाल हवेली के एक कमरे में पूजा स्थान बना लिया। कमरे का द्वार पूर्व दिशा में खुलता था। द्वार के बाहर तुलसी का पौधा था। संध्यावंदन के लिए बैठते समय मुँह पूर्व दिशा की ओर होता था। अर्घ्य देना होता तो वे बाहर आ जाते और पौधे के पास खड़े होकर सूर्य नमस्कार करके

इस तरह जल चढ़ाते कि वह ज़मीन पर न गिर कर तुलसी की क्यारी में ही गिरे।

जब श्रीराम मंदिर में संध्यावंदन करते थे तो अर्घ्य के लिए उठकर कहीं जाना नहीं पड़ता था क्योंकि जिस जगह बैठते, वहीं सामने एक पात्र रख लेते और खड़े होकर जल चढ़ा देते। माँ के कहने पर घर में ही उपासना शुरू की तो अर्घ्य के लिए बाहर जाना ज़रूरी हो गया। जिस सावधानी से स्थान का चुनाव किया, वैसी ही सावधानी समय के निर्धारण में भी बरती उसे पूरी तरह निभाने का भी प्रयत्न किया यानि प्रात:- संध्या सुनहरा सूर्य उदय होने से पहले और सायंकाल की संध्या सूर्यास्त से पहले आरम्भ हो जानी चाहिए ।

श्री राम सुबह चार बजे उठ जाते। स्नान आदि से निवृत होने और संध्यावंदन के लिए बैठने में एक घंटा समय लगता। हवेली परिसर में बने कुँए से वह अपने हाथ से पानी निकलते। बाहर लालटैन की रोशनी फैली रहती जिसके कारण कोई कठिनाई नहीं होती।

हवेली के अन्य लोग भी हाँलाकि जगे ही होते थे लेकिन फिर भी श्रीराम इस बात की पूरी सावधानी बरतते कि बाल्टी रखने या पानी गिराने की आवाज न हो। चुपचाप स्नान से निपट जाते और किसी को आहट तक भी नहीं होती थी। संध्यावंदन आरंभ करने के बाद श्रीराम जप और ध्यान में पूरी तरह तन्मय हो जाते थे। अवधि की दृष्टि से उनकी संध्या 40 मिंट में संपन्न हो जाती थी लेकिन इस अवधि में भी उनकी तन्मयता पूरी तरह से होती थी। गायत्री मंत्र की एक माला और सूर्योदय के स्वर्णिम प्रकाश का ध्यान करने में 6 मिंट का समय लगता है। अभ्यास हो जाने पर 4 मिंट ही लगते है। इस स्थिति में गणना में थोड़ी चूक की संभावना रहती है। गायत्री दीक्षा लेने के बाद श्रीराम 5 माला सुबह और 2 माला शाम के समय जपते थे। तन्मयता इतनी रहती थी कि भूलचूक की गुंजाइश ही नहीं बचती। प्रातः और सायं के संध्या में कुल मिलाकर एक घंटा समय लग जाता । ध्यान धारणा का क्रम जप के बाद भी यथासमय चलता रहता।

वसंत पंचमी का दिन था और श्रीराम संध्यावंदन कर रहे थे। गायत्री जप करते हुए एकाग्र अवस्था थी। सुखासन से बैठे श्रीराम के केवल होंठ ही हिल रहे थे, मुख से से कोई ध्वनि नहीं हो रही थी। जप की उपांशु अवस्था थी, जिसमें होठ तो हिलते हैं, मुँह के भीतर स्वर यंत्रों में भी कंपन होता रहता है, लेकिन ध्वनि नहीं होती। मुँह बंद कर मानस जप में अधिक समय लगता है और विस्मरण की आशंका भी रहती है। मालवीय जी ने इसीलिए उपांशु जप का चयन किया था । इस जप के साथ पूर्व दिशा में उग रहे सविता देवता का ध्यान । बंद नेत्रों से भृकुटि में जो क्षितिज दिखाई दे रहा है, वहीं जैसे उदयाचल है। भ्रूमध्य की आकृति भी ऐसी ही बनती है, जैसे पर्वतों के दो गोलार्ध मिल रहे हों और उनके संधि स्थल पर नए आलोक का उदय होता हो। उदित हो रहे आलोक के समय चेतना जगत् में स्वर्णिम आभा फैलने लगी। प्रकाश की चादर बिछ्ती चली जा रही है। अपना अस्तित्व निसर्ग के इस विस्तार से अभिभूत हो रहा है। शरीर, मन, बुद्धि, चित्त और उससे आगे सत्ता के जितने भी लोक हो सकते हैं, सबमें उस प्रकाश से जीवन

चेतना व्यापती जा रही है। भोर होते ही रात की नींद जैसे स्वयं ही उचटने लगती है, वैसे ही चेतना में छाई थकावट दूर हो रही है और नया उत्साह आ रहा है। सुबह की ताज़गी अस्तित्व के रोम-रोम में फैलती जा रही है। स्वर्णिम प्रकाश का ध्यान करते हुए यह अनुभूति और भी प्रगाढ़ होती जाती थी। जिस क्षण की घटना का उल्लेख आगे की पंक्तियों में किया जा रहा है, उस क्षण में जप और ध्यान की क्या अवस्था चल रही थी, कहना कठिन है लेकिन जिस तरह के उल्लेख मिलते हैं, उनमें वह अवस्था मनोमय की ही कही जा सकती है। इस अवस्था में चित्त संकल्प-विकल्प से मुक्त हो जाता है। योगशास्त्रों में 'निर्वात निष्कम्प दीपशिखा' कहते हुए ही ऐसे चित्त का वर्णन किया गया है। वायु रहित स्थान में जलते हुए दीपक की लौ जिस तरह नहीं काँपती, उसी तरह हमेशा काँपते और डोलते रहने वाला चित्त भी संकल्प-विकल्प की आंधी का अभाव हो जाने से स्थिर हो जाता है। कुछ योगियों के अनुसार यह ध्यान में गहरे उतरने और समाधि के समीप पहुँच जाने की अवस्था है।

संकल्प-विकल्प को इंग्लिश में resolutions and options कहते हैं। इन शब्दों का संबध मन से है यानि संकल्प में हम अपने मन को कण्ट्रोल करते हैं और संकल्प किया हुआ कार्य पूर्ण करते हैं। दूसरी अवस्था में हम लिए हुए संकल्प से डर कर तरह तरह के विकल्प ढूंढते हैं और मन हमें कट्रोल करता है।

आंवलखेड़ा स्थित कोठरी में दादा गुरु सर्वेश्वरानंद जी के प्रकाश शरीर का अवतरण

चेतना की शिखर यात्रा पार्ट 1, चैप्टर 6

प्रकाश शरीर का अवतरण :

श्रीराम अपने आसन पर बैठे मनोमय समाधि की भूमिका में हैं। उस भूमिका से गुजरते हुए जप के अंतिम चरण तक पहुँचते हैं। जप पूरा होता है, सविता देवता के चरणों में जप निवेदन करते हुए हाथ जोड़कर बैठे ही थे कि अचानक बिजली-सी कौंधी और कोठरी चकाचौंध करने वाले प्रकाश से भर गयी। हम सबने कभी न कभी बिजली चमकने एवं बादल गरज़ने का दृश्यअवश्य ही देखा होगा लेकिन कोठरी के क्षण और साधारण क्षण में एक बड़ा अंतर् था। साधारण क्षण में प्रकाश चमकने के साथ उसी क्षण लुप्त हो जाता है लेकिन कोठरी में यह प्रकाश लुप्त न होकर स्थिर रहा। प्रकाश चमकता हुआ था लेकिन उसकी intensity थोड़ी शांत और शीतल

हो गई। यह शीतलता सूर्य की स्वर्णिम लालिमा और चंद्रमा की चाँदनी जैसी थी।

जिस समय प्रकाशीय चमक हुई थी, ऐसा लगता था जैसे कोठरी में एक साथ हज़ार सूर्य चमक उठे हों । कुछ क्षण बाद जब प्रकाश धीरे-धीरे स्थिर हुआ तो कोठरी में एक सौम्य (gentle) आकृति प्रकट हुई। लम्बी जटाएँ, शरीर अत्यंत पतला लेकिन लेकिन चमकदार । वह कमज़ोर ज़रूर दिखाई देता था लेकिन स्वरूप में तेजस्विता और बल का पूर्ण समावेश था । ऐसा लगता था जैसे कि यह पतली सी काया फौलाद से बनी हो। आकृति दिगंबर (नग्न) थी लेकिन आसपास आभा मंडल इस प्रकार छाया हुआ था कि शरीर बर्फ की चादर से ढंका हुआ सा लगता था।

साधक श्रीराम उस सौम्य आकृति को देखकर हर्षित हुए और मन में तसल्ली का भाव आया। क्षण भर पहले जो भय व्याप्त हो रहा था, वह गायब हो गया और उस आकृति को देखकर मन में उल्लास उमगने लगा। भय तो स्वाभाविक ही था क्योंकि 15

वर्षीय बालक के लिए यह एक अनुपम दृश्य था। इच्छा हुई कि उठकर प्रणाम कर लें। संध्याकर्म में “प्रदक्षिणा कर्म” अभी बाकी था। दिव्य आकृति तो अन्तर्यामी थी,उसे तो सब कुछ पता था। उसने श्रीराम के भावों को पढ़ लिया और बैठे रहने का संकेत किया। श्रीराम बैठे ही उस आकृति को निहारते रहे, जैसे भगवान् सविता देवऋषि के रूप में प्रकट हुए हों। आकृति श्रीराम के करीब आई। ऐसा प्रतीत नहीं होता था कि वे कुछ कदम आगे बढ़ कर आए हों। यह प्रतीत हो रहा था कि जैसे दूरी स्वयं ही घट गई हो। समीपता इतनी बनी कि बैठे-बैठे ही हाथ आगे बढ़ा कर चरण छू लें। चरण स्पर्श की आवश्यकता ही नहीं पड़ी क्योंकि शीश स्वयं ही चरणों में झुक गया। दिव्य आकृति ने अपना हाथ श्रीराम के शीश पर रख दिया। हाथ रखते ही उस दिव्य स्पर्श ने बालक श्रीराम के व्यक्तित्व में जो झंकार जगाई उसे शब्दों में व्यक्त करना लगभग असंभव ही है।

मनीषियों ने उस तरह की अनुभूतियों को हज़ार तरह से कहने की कोशिश की है और कोशिश कर चुकने के बाद थक कर चुप हो गये

हैं। उपनिषदों ने उस अनुभूति को निम्नलिखित भावों में व्यक्त किया है:

कान केवल सुनते हैं,बोलते नहीं और मुंह केवल बोलता है,सुनता नहीं। कबीर जी ने इस स्थिति को "गूंगे केरी सरकरा" कह कर गाया है। स्वाद तो आता है लेकिन उस स्वाद को express करना कठिन है।

"अकथ कहानी प्रेम की,कहत कहि न जाय,गूंगे केरी सरकरा, खाय और मुसकाय।"

कबीर जी कहते हैं कि परमात्मा के प्रेम की कथा वर्णन से परे है। प्रेम की अनुभूति गूंगे के गुड़ जैसी है। गूंगा शक्कर को खाकर आनंदित तो होता है लेकिन खुद ही मुस्काता है क्योंकि जुबां न होने के कारण मीठे स्वाद को express नहीं कर सकता। जो मनुष्य परमात्म-भक्ति यानि ईश्वर-प्रेम का स्वाद चख लेता है उसके बाद उसे कोई भी सांसारिक पदार्थ आकर्षित नहीं करता ।उसके अंतःकरण में प्रेम के लड्डू फूटते रहतें हैं। वह मुस्काता

रहता है लेकिन गूंगे की भांति उस अवर्णीय (जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता) आनंद को बयान नहीं कर सकता। व्यक्ति गूंगा हो जाता है। यह प्रेम उत्कर्ष की चरम सीमा होती है जिसमें केवल परमानंद ही रह जाता है।

बालक श्रीराम को लगा जैसे समय ठहर गया हो। दिव्य स्पर्श ने श्रीराम के सामने एक अलग ही संसार खोल दिया। उस संसार में वाणी की आवश्यकता नहीं हुई, समय भी ठहर गया और स्थान तो जैसे अपनी सीमाएँ ही भूल गया। देशकाल से परे उस अनुभूति में मार्गदर्शक सत्ता ने पिछले कई जन्मों की यात्रा करा दी। यह यात्रा स्मृतियों में उतरकर नहीं, शुद्ध चेतना के जगत् में प्रवेश करके ही संपन्न हुई थी।

मार्गदर्शक सत्ता ने गुरुदेव को प्रथम जन्म "संत कबीर के दर्शन कराए"

चेतना की शिखर यात्रा पार्ट 1, चैप्टर 6

दादा गुरु ने बालक श्रीराम को दिव्य जगत में प्रवेश कराया। उस जगत् में प्रवेश करते ही श्रीराम अपनेआप को वाराणसी में उपस्थित अनुभव करते हैं। उस क्षण को "अनुभव" कहना भी शायद गलत हो। वे वाराणसी में ही थे। पूजा की कोठरी में जिस रूप, अवस्था और वेश में थे, उससे सर्वथा भिन्न।अपनेआप को एक अनजाने रूप में पाया, लेकिन ऐसा नहीं लगा कि किसी आश्चर्यलोक में हों। अपरिचित होते हुए भी वह समय, स्थिति और स्वरूप जाना पहचाना सा लग रहा था, जैसे अपनी चेतना में ही घट रहा हो या स्वयं उस स्थिति के नायक हों।

एक दृश्य में स्वामी रामानंद काशी के घाट पर स्नान करने जा रहे हैं। कोई व्यक्ति रामानंद से रामनाम की दीक्षा लेने की आस लिए हुए सीढ़ियों पर लेटा हुआ था । पहले प्रयत्न कर देखा था, लेकिन

गुरु के सहयोगियों ने यह कह कर मना कर दिया कि शूद्रों को रामनाम की दीक्षा नहीं दी जाती। वे अपनेआप चाहे जप कर लिया करें, गुरु मुख से सुनने की योग्यता उनमें नहीं है। वह शूद्र संत कबीर थे और पूजा की कोठरी में सिर पर हाथ का स्पर्श पाकर जो श्रीराम यह सब अनुभव कर रहे थे,वही थे। वह अपनेआप को सीढ़ियों पर लेटा हुआ देख भी रहे थे। ब्रह्ममुहूर्त में स्वामी रामानंद गंगा स्नान के लिए आए। सीढ़ियों पर कबीर ने अपने आपको इस तरह समेट लिया कि दिखाई न दें। घाट की सीढ़ियाँ उतरते ही उनका दाहिना पाँव कबीर के शरीर पर पड़ा और बोध हुआ कि किसी को चोट लगी है। इस बोध के साथ स्वामी जी के मुँह से 'राम-राम' की ध्वनि निकल आई। कबीर ने तत्क्षण उठ कर स्वामी जी के पाँव पकड़ लिए और कहा मैं धन्य हुआ पूज्यवर। मुझे गुरुमंत्र मिल गया।

इस घटना के बाद स्वामी रामानंद ने कबीर को विधिवत् अपना शिष्य स्वीकार किया। काशी के विद्वानों, आचार्यों, साधुओं और महामण्डलेश्वरों ने इसका घोर विरोध किया। उन्हें धर्मद्रोही तक

करार दिया। रूढ़ियों और पंरपरा के प्रति अत्यधिक विद्रोह करने वाले स्वामी रामानंद पर इसका जरा भी असर नहीं हुआ।

कबीर कपड़ा बुन कर अपना निर्वाह चलाते थे। काम करते हुए ही वे साधकों और जिज्ञासुओं को धर्मोपदेश देते थे। बालक श्रीराम को दिखाई दे रहा है कि दसियों लोग उन्हें घेरे बैठे हैं। चर्चा के विषय अध्यात्म तक ही सीमित नहीं हैं; घर, परिवार, समाज और समकालीन घटनाओं पर भी बातचीत होती है। निर्वाह होने योग्य कपड़ा तैयार हो जाने के बाद कबीर खुद उसे बेचने जाते। कोई मोल भाव नहीं, जिसने जो मूल्य आँका और देना चाहा, वह ले लिया। फिर घर आ गए। इस तरह के सौदे में कभी घाटा नहीं हुआ। ज्यादा होशियारी बरतने वालों ने एकाध बार चालाकी की होगी, लेकिन आमतौर पर सभी ग्राहक ईमानदारी ही बरतते हैं। सत्संग में आने वालों ने कभी पूछा तो कबीर का उत्तर था: हमारे मन में फायदा उठाने की बात ही नहीं आती। हमें क्या नुकसान होगा? नुकसान तो उसे ही है जो लाभ कमाने निकला हो।

एक सत्संग में किसी ने पूछा कबीर साहब आपका परिवार बड़ा खुश है। सुखी दाम्पत्य का क्या रहस्य है? सुनकर कबीर कुछ क्षण तक चुप रहे। फिर पत्नी को पुकारा, 'लोई बड़ा अंधेरा है दीपक जलाकर लाना'। (लोई उनकी पत्नी का नाम था) सुनने वालों को भारी असमंजस हुआ। भरी दोपहरी का समय था बीच आसमान में सूरज चमक रहा था। जिस जगह कबीर सत्संगियों के साथ बैठे थे, वहाँ भी पर्याप्त रोशनी थी। अबूझ स्थिति में पड़े लोगों को तब और आश्चर्य हुआ जब लोई दीपक जलाकर लायी और कबीर के पास रखी एक चौकी पर रख कर चली गई। कबीर ने कहा पति-पत्नी में इस तरह का विश्वास हो तो दांपत्य बड़े मजे से चलता है। लोई भी जानती है कि भरी दोपहरी हैं और दीपक की जरूरत नहीं है, फिर भी जब कबीर ने कहा तो उसने संदेह नहीं जताया। वह कहे अनुसार चुपचाप अपना काम कर चली गई।

परिवार की आमदनी सीमित थी और आगंतुकों का तांता लगा रहता था। आने वालों की आवभगत भी होती। घर में हमेशा तंगी बनी रहती। पुत्र कमाल बड़ा हुआ। परिवार में बनी रहने वाली

तंगी का अच्छी तरह ख्याल था। उसने व्यापार व्यवसाय में ध्यान दिया। कबीर का ज़ोर वहाँ भी शुद्धता और न्याय की कमाई पर रहता था। पुत्र को व्यावहारिक अध्यात्म की दीक्षा दी। वैसे ही संस्कार भी दिये।

कबीर की काया पर विवाद :

एक अन्य दृश्य में कबीर हिन्दू और मूसलमान दोनों को फटकारते दिखाई दिए। सब धर्मों की एकता पर नहीं, उनके अनुयायियों में सामंजस्य पर उनका जोर था। बाहरी स्वरूप, कर्मकाण्ड, प्रतीक और आचरण आदि में ज़मीन आसमान का अंतर होते हुए भी सब धर्म एक ही सत्य का उद्घोष करते हैं। वह सत्य अपने भीतर बैंठा परमात्मा और बाहर उसी की अभिव्यक्ति का उद्घोष है। कबीर का निधन मगहर में हुआ या काशी में इस पर इतिहास के जानकारों में मतभेद है। मगहर उत्तर प्रदेश की संत कबीर डिस्ट्रिक्ट में एक कस्बा है। कहते हैं उनका निधन हुआ तो हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों ने अपने रिवाज के अनुसार अंतिम संस्कार करना चाहा । इस

पर विवाद भी हुआ। हिन्दू शव का दाह संस्कार करना चाहते थे और मुसलमान दफनाना। यह कहानी ही होगी कि दोनों पक्ष के लोगों ने शव पर पड़ा कफन हटाया, तो वह मृत काया के स्थान पर फूलों का ढेर था। आधे फूल हिन्दुओं ने लिए और आधे मुसलमानों ने। दोनों संप्रदाय के लोगों ने अपने अपने विधान के अनुसार दाह और दफन किया। पंच तत्वों से बना शरीर अलग-अलग प्रक्रिया से अपने मूल रूप में पहुँच गया। कथा इस सत्य की घोषणा करती है।

एक वर्ग की मान्यता है कि अंतिम समय निकट जानकर वे स्वेच्छा से काशी छोड़कर मगहर चले गये। उद्देश्य इस अंधी धारणा को तोड़ना था कि काशी मोक्षनगरी है, वहाँ जो भी कोई मरता है, वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इस अंध विश्वास के कारण ही लोग काशी में आत्महत्या तक कर लेते थे। मगहर में मरने वालों को नरकगामी बनना पड़ता है। इस अंधविश्वास को तोड़ने के लिए कबीर ने अपना अंतिम समय वहीं बिताया। मगहर में ही शरीर छोड़ा। कौन कहता है कि मगहर में मरने से कबीर को कर्मबंधनों ने जकड़े रखा होगा।

कबीर का जीवन ऐतिहासिक वर्णनों की अपेक्षा मिथकों और किंवदन्तियों में ज्यादा झलकता है। मुसलमान जुलाहे ने उनका पालन-पोषण किया। कहते हैं वे किसी ब्राह्मण कन्या से जन्मे थे। उनके जन्म और लालन-पालन में हिंदू तथा मुस्लिम दोनों ही धर्मों की छाया थी। हिन्दू और इस्लाम दोनों ही धर्मों में छाए पाखण्डों और अंधविश्वासों का जैसा कड़ा विरोध उन्होंने किया, वह सभी जानते हैं। इन प्रयासों की प्रतिक्रिया भी कम नहीं हुई। कुछ संप्रदाय वालों ने उन्हें जान से मरवाने की कोशिश की, तो कुछ ने उन्हें काशी से निष्कासित करा दिया।

कबीर के जीवन से सबंधित अनेक घटनाएँ श्रीराम के मानस पटल पर उमड़ आईं। वे आती-जाती रहीं। शरीर छूटने के दृश्य के साथ समाप्त हुई और यह अंर्तदृष्टि जगा गई कि विद्या, विवेक का स्रोत अपना अंतस है । शास्त्र कितने ही पढ़ लिए जाएँ, अपने भीतर प्रज्ञा का जागरण न हो, तो सब व्यर्थ है। इसके विपरीत अंतश्चेतना जाग्रत हो जाए, तो कुछ पढ़ा-लिखा है या नहीं, अंतर्दृष्टि अपनेआप सब कुछ जानने, समझने में समर्थ हो जाती है, समझ ही लेती है।

कबीर की स्मृतियाँ पूरी हुईं। उनका जीवन क्रम चलचित्र की भाँति घूम गया और अगला सीन समर्थ गुरु रामदास जी का था।

मार्गदर्शक सत्ता ने गुरुदेव को दूसरे जन्म “समर्थ गुरु रामदास” के दर्शन कराए

चेतना की शिखर यात्रा पार्ट 1, चैप्टर 6

कुछ अंतराल के बाद इतिहास की दृष्टि से 100 वर्ष बाद का समय शुरू होता है। देश के हिसाब से महाराष्ट्र में और काल के हिसाब से औरंगजेब के आततायी शासन का युग। उस समय किसी भी व्यक्ति या समूह को अपनी आस्था के अनुसार जीने की सुविधा नहीं थी। अपने विश्वासों के लिए मूल्य चुकाना पड़ता था। वह मूल्य धन के रूप में भी हो सकता था और दंड के रूप में भी। विभिन्न धर्म संप्रदाय, खासकर साधना और विद्या की भारतीय धाराएँ इतनी दुर्बल और कुंठित हो गई थीं कि आपस में ही लड़ने-भिड़ने लगी थीं। आत्मनाश करने में जुटी हुई थी। अन्धकार और निराशा से भरे उस युग में महाराष्ट्र में एक संन्यासी का उदय हुआ जिसका नाम था रामदास। भगवान् राम की 12 वर्ष उपासना करने के कारण ही उनका नाम “रामदास” पड़ा। वे प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में

उठकर प्रतिदिन 1200 बार सूर्य नमस्कार करते, उसके बाद गोदावरी नदी में खड़े होकर राम नाम और गायत्री मंत्र का जाप करते थे। दोपहर में केवल 5 घर की भिक्षा मांग कर वह प्रभु रामचंद्र को भोग लगाते थे। उसके बाद प्रसाद का भाग प्राणियों और पंछियों को खिलने के बाद स्वयं ग्रहण करते थे। दोपहर में वे वेद, वेदांत, उपनिषद्, शास्त्र ग्रन्थोंका अध्ययन करते थे। उसके बाद फिर नाम जप करते थे। उन्होंने 12 वर्षों में 13 करोड राम नाम जप किया। ऐसा कठोर तप

दादा गुरु पूजा की कोठरी में श्रीराम के सामने उस साधु की जीवन लीला के विभिन्न दृश्यों को एक चलचित्र की भांति प्रस्तुत कर रहे हैं। युवा रामदास विवाह मंडप में बैठे हैं, पास ही वधू, सप्तपदी शुरू होने से पहले पुरोहित कर्मकांड के लिए तैयार है। पंडित जी ने कहा, "वर-वधू सावधान रहें आगे की क्रियाएँ होश के साथ,उनका अर्थ समझते हुए संपन्न करो।" "सावधान" के उद्घोष ने रामदास की चेतना को अलग ही तरह से झकझोर दिया। अंतरात्मा ने कचोटा कि देश और धर्म तो भीषण परिस्थितियों से गुज़र रहा है और

तुम्हें घर गृहस्थी बसाने की पड़ी हुई है। रामदास विवाह मंडप छोड़कर भाग निकले, सावधान हो गए, संन्यास जीवन अपनाया, परशुराम की तरह शास्त्र और शस्त्र दोनों की शिक्षा का प्रचार किया।

सावधान हुए रामदास

समर्थ गुरु रामदास (सन् 1608 से 1692) के रूप में विख्यात हुई इस विभूति ने पंचवटी (नासिक) में बारह वर्ष तक गायत्री साधना की।नासिक और पंचवटी वस्तुत: एक ही नगर हैं। गोदावरी के दक्षिणी तट पर स्थित नगर के मुख्य भाग को नासिक कहा जाता है और गोदावरी के उत्तरी तट पर जो भाग है वह पंचवटी कहलाता है।

साधना के बाद वे तीर्थयात्रा के लिए निकल गए। देश और समाज की समस्याओं और उस समय की परिस्थितियों को समझा और महाराष्ट्र वापस लौट आए। वहाँ उन्होंने शरीर, मन और आत्मा तीनों दृष्टि से बलवान युवकों को संगठित करने की योजना बनाई

और उसे कार्यान्वित किया । जहाँ भी जाते हनुमान मंदिर की स्थापना और मंदिर के साथ अखाड़े बनाते । इनमें किशोर और युवकों को व्यायाम करने, कुश्ती लड़ने, मल्ल युद्ध करने और हथियार चलाने का अभ्यास कराया जाता। उन अखाड़ों की परंपरा देश में आज भी अवशिष्ट है। लोग उन्हें "रामदासी अखाड़ों" के रूप में जानते हैं।

एक दृश्य में समर्थ रामदास संन्यास वेश में अपनी माँ से मिलने जाते हैं। जब से वह विवाह मंडप से उठकर भागे थे तब से माँ ने रो-रोकर अपना बुरा हाल कर लिया था। आँखों की रोशनी जाती रही। कोई भी प्रसंग उठता, तो अपने लाड़ले को याद करती। साधना और तीर्थयात्रा से लौटने के तुरंत बाद समर्थ रामदास ने माँ को ढूँढा, उनके चरणों में प्रणाम किया। माँ ने आहट से ही पहचान लिया कि बेटा आया है। समर्थ पुत्र के सिर पर स्नेह से हाथ फेरा और माँ देखने लगी। बेटा दिखाई देने लगा। पुलकित होकर माँ ने कहा,

“लगता है बेटा तूने कोई भूत सिद्ध कर लिया है और उसी की शक्ति से तुमने मेरी आँखों की ज्योति वापस ला दी। बता तो सही कौन है वह भूत।”

समर्थ रामदास माँ का आशीर्वाद पाकर निकल पड़े। साधु संन्यासियों और गृहस्थों को संगठित करने में लगे। उनके मार्गदर्शन में जिन शूरवीरों ने स्वतंत्रता और राष्ट्र के गौरव की पुनर्स्थापना के लिए संघर्ष छेड़ा था, उनमें “छत्रपति शिवाजी” का नाम सबसे ऊपर है। शिवाजी को दीक्षित करने, राष्ट्र के उद्धार में लगाने, अधर्म को नष्ट करने के लिए सभी संभव उपाय करने की प्रेरणा देने वाले अनेक दृश्य मानस पटल पर उभर आए। एक दृश्य में वे शिवाजी के पास भिक्षा माँगने गये। छत्रपति उस समय साम्राज्य की स्थापना कर चुके थे। गुरु ने अलख जगाई। 'जय-जय रघुवीर समर्थ,' पुकार सुनकर शिवाजी दौड़े आए, सोचने लगे कि गुरु की झोली में क्या अर्पित करूँ। क्षण भर में ही तय कर लिया। कागज़ कलम उठाकर “संकल्प पत्र” लिखा और कहा कि पूरा राज्य आज से आपका। आप ही शासन कीजिए। यह कह कर संकल्प ग्रहण कर लिया।

गुरु ने कहा,

“हाँ आज से यह राज्य मेरा ही है, तुम इसे मेरी धरोहर मानकर संभालो। इसे बढ़ाओ, समृद्ध करो और राष्ट्र के जागरण में अपनी आहुति दो।”

इसके बाद धर्म के अनुसार किसी राज्य को कैसे चलाया जाय उसके लिए एक प्रवचन। वह प्रवचन केवल शिवाजी के लिए ही नही बल्कि सभी शासकों के लिए धर्मविधान है। इस प्रवचन में सभी देवों को नमस्कार किया गया है। यह प्रार्थना समर्थ रामदास की कृति 'दासबोध' में भी है।

इस प्रवचन के स्वर उस सीन में गूंज रहे थे,ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे स्वयं श्रीराम ही गा रहे हों । प्रस्तुत है प्रवचन की कुछ पंक्तियाँ:

“हे गजवंदन (गणेश जी) तुम्हें प्रणाम है। तुम्हारी महिमा का कोई पार नहीं है। हे विष्णु ! तुम धन्य हो। तुम्हीं ने सृष्टि की रचना की तुम सबका पालन करते हो। शिव को प्रणाम है, जो निरंतर

रामनाम का जप करते हैं उनके लिए तुम्हारी देन का अंत नहीं है। हे इंद्रदेव! तुम धन्य हो। तुम धर्म-अधर्म सब जानते हो। मुझे भी उसे मानने समझने की शक्ति दो। हे परम बलवान हनुमान ! तुम धन्य हो। हमें भी बल के उपासक बनाओ। क्षेत्रपाल तुमने बहुत से लोगों को मुक्ति मार्ग पर प्रेरित किया है। हे पांडुरंग! तुम्हारे यहाँ सदा भगवत्कथा की धूम मची रहती है। रामकृष्ण आदि अवतारों की महिमा अपार ही है। उन्हीं के कारण बहुत से लोग उपासना में तत्पर हुए हैं। लेकिन इन सब देवताओं का मूल यह अंतरात्मा है। भूमण्डल के सब लोग इसी को प्राप्त होते हैं। यही अनेक शक्तियों के रूप में प्रकट हुआ और सब वैभवों का भोग करने वाला है।'

प्रार्थना लम्बी है। उसमें अपने भीतर निहित और बाहर जगत् में व्याप्त विविध शक्ति रूपों के आध्यात्मिक पक्ष को संबोधित किया गया है।

प्रार्थना संपन्न होने के बाद समर्थ रामदास अपनी लीला का संवरण करते हैं। उनके अवतरण का उद्देश्य ही दिव्य जीवन के आंतरिक

सत्य को उजागर करना था। अपने कर्त्तव्य कर्मों के पालन, धर्म सेवन और लोक कल्याण की विभिन्न गतिविधियों के दृश्य दिखाई दिये।

मार्गदर्शक सत्ता ने गुरुदेव को तीसरे जन्म "रामकृष्ण परमहंस " के दर्शन कराए

इसी बीच सीन बदलता है और एक नया दृश्य दिखाई देता है जो कलकत्ता के आसपास का है। समय उन्नीसवीं शताब्दी के ठीक पूर्वार्ध का था। यह दृश्य था दक्षिणेश्वर मंदिर में अपने बड़े भाई के साथ आकर ठहरे एक किशोर का जिसका नाम था रामकृष्ण यानि रामकृष्ण परमहंस। मन मसोस कर इस दिव्य विभूति को दर्शाता सीन कल वाले ज्ञानप्रसाद के लिए स्थगित करने की विवशता को हमारे परिजन अवश्य समझेंगें, ऐसा हमारा अटल विश्वास है।

चेतना की शिखर यात्रा पार्ट 1, चैप्टर 6

दक्षिणेश्वर की स्थापना रानी रासमणि ने की थी जो एक केवट,मल्लाह जाति की थी। लोगों ने रानी रासमणि द्वारा बनाए गए मंदिर का विरोध किया, कहा कि इस मंदिर में न तो काली की प्रतिष्ठा हो सकती है और न ही पूजा। विद्वानों और पंडितों के विरोध के कारण किसी ने पूजा भी का दायित्व स्वीकार नहीं

किया। रानी रासमणि ने कई आश्रमों, गुरुकुलों विद्यापीठों के द्वार खटखटाए, पंडितों को निवेदन किए लेकिन किसी का भी हृदय नहीं पसीजा। कलकत्ता के पास ही कामारपुकुर गाँव में एक युवा ब्राह्मण पंडित रामकुमार चट्टोपाध्याय जी ने रानी रासमणि को पूजा के लिए हाँ कह दी। इसके लिए उन्हें अपने बंधु बांधवों का भारी विरोध सहना पड़ा। यह बात 1855 की है, रामकुमार जी केवल एक वर्ष ही इस दाइत्व को संभाल पाए। 1856 में उनके छोटे भाई रामकृष्ण परमहंस जी को दक्षिणेश्वर मंदिर का पुरोहित नियुक्त किया गया

माँ काली से जीवंत संपर्क

रामकृष्ण जी की श्रद्धा भक्ति से कौन परिचित नहीं है। बैठे-बैठे वह काली की प्रतिमा को निहारते रहते। हम सब जानते हैं कि रामकृष्ण जी का पूजा-विधान बहुत ही विचित्र था। वह प्रतिमा को केवल प्रतिमा नहीं बल्कि जीवित मान कर ही व्यवहार करते थे। माँ काली के साथ उनका व्यवहार किसी देवी जैसा नहीं बल्कि

जाग्रत् और जीवंत माता जैसा था, माँ की तरह ही सेवा करते थे, जहाँ तक कि उनके संवाद भी इस तरह चलते थे, जैसे प्रतिमा जवाब भी दे रही हो। माँ काली की पूजा और साधना करते हुए रामकृष्ण जी इस दुनिया को तो भूल जैसे ही गए। दूर-दूर तक उनकी साधना और समाधि की चर्चा फैल गई। लोग उनका दर्शन करने आने लगे। मंदिर में भक्तों की भीड़ बढ़ने लगी। माँ काली के असीम भक्त और सिद्ध सन्त के रूप में बढ़ती हुई ख्याति के दिनों में ही रामकृष्ण जी का माँ शारदामणि विवाह हो गया। पत्नी आयु में सोलह वर्ष छोटी थी, लेकिन आयु के इस अंतर का इससे कोई संबंध नहीं था। हमारे पाठक जानते हैं कि हमारे गुरुदेव की पत्नी वंदनीय माता भगवती देवी शर्मा भी गुरुदेव से 15 वर्ष छोटी थीं। यहाँ पर आयु का अंतर अर्थहीन इसलिए है कि यह विवाह सामान्य गृहस्थ जीवन बिताने के लिए नहीं हुए थे ।

आगे चलकर रामकृष्ण जी के आसपास शिष्य और साधकों का एक बड़ा समुदाय इकट्ठा हुआ। उनकी देखभाल और स्नेह देने के लिए ही जैसे यह विवाह हुआ था। स्वयं रामकृष्ण जी की स्थिति

ऐसी नहीं थी कि वे साधकों की छोटी मोटी ज़रूरतों का भी ध्यान रख सकें। प्रारंभिक दिनों में ही उनकी "भाव समाधि" लग जाया करती थी। भाव समाधि की अवस्था में उनका शरीर पूर्ण तरह बेसुध हो जाता। कोई हलचल नहीं होती। जिन लोगों को इस स्थिति का भान न हो तो वह भाव समाधि की अवस्था में रामकृष्ण जी के शरीर को एक मृतकाया ही समझ बैठते। उस अवस्था में माँ शारदामणि ही रामकृष्ण की देखभाल करतीं।

हमारे पाठक रामकृष्ण परमहंस देव जी के बारे में कई बहुचर्चित कथाओं से परिचित हैं।

रामकृष्ण जी की श्रद्धा दर्शाती है कि सब वस्तुओं का सार ईश्वर ही है और उसी को पाने का प्रयत्न करना चाहिए। एक बार उन्होंने एक हाथ में रुपया और दूसरे में मिट्टी का ढेला लिया और मन को संबोधन करके कहने लगे :

"हे मन, तू इसको रुपया कहता है और इसको मिट्टी। रुपया चाँदी का गोल टुकड़ा है जिस पर एक ओर रानी (विक्टोरिया) की

तस्वीर छपी है। यह जड़ पदार्थ है। रुपया से चावल, कपड़ा, घर, हाथी, घोड़ा आदि पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं, दस-बीस मनुष्यों को भोजन कराया जा सकता है, तीर्थ-यात्रा, देवता और संतों की सेवा की जा सकती है। पर इसके द्वारा सच्चिदानंद की प्राप्ति नहीं हो सकती। क्योंकि इसके रहते हुए अहंकार सर्वथा नष्ट नहीं हो सकता और न मन आसक्तिहीन हो सकता है। देवता और साधु की सेवा आदि धर्म-कार्य किए जा सकने पर भी यह मन में रजोगुण और तमोगुण ही उत्पन्न करता है और इस दशा में सच्चिदानंद की प्राप्ति नहीं हो सकती।"

मिट्टी को देखकर वे कहते:

"यह भी जड़ पदार्थ है, पर इससे अन्न उत्पन्न होता है जिससे मनुष्य के शरीर की रक्षा होती है। मिट्टी के द्वारा ही घर बनाया जाता है, देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी बनाई जा सकती हैं। द्रव्य के द्वारा जो कार्य होते हैं वे मिट्टी द्वारा भी हो सकते हैं। दोनों एक ही श्रेणी के जड़ पदार्थ हैं और दोनों का परिणाम एक ही तरह का होता है। अरे

मन! तू इन दोनों पदार्थों को लेकर तृप्त होगा या सच्चिदानंद को प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा।”

इस प्रकार कहकर उन्होंने नेत्र बंद कर लिए और ‘रुपया-मिट्टी’ ‘रुपया-मिट्टी’ इस प्रकार की ध्वनि करने लगे। अंत में उन्होंने रुपया और मिट्टी दोनों को गंगाजी में फेंक दिया। इस प्रकार बारबार अभ्यास करके उन्होंने अपने मन को धातु (रुपया) के प्रति इतना विरक्त बना लिया कि किसी धातु के छूने से बड़ा कष्ट जान पड़ता था। इसी प्रकार उन्होंने स्त्री के संबंध में विचार किया कि उसकी वासना किसी भी प्रकार से क्यों न रखी जाए, उससे मस्तिष्क और मन दुर्बल ही होते हैं और परमात्म-चिंतन में बाधा पड़ती है। माना कि उसे लोग सुख के लिए ग्रहण करते हैं, पर वह सुख क्षणिक ही रहेगा ,कभी स्थाई नहीं होगा और परिणाम हानिकारक ही होगा।

इस तरह की और भी विचित्र लीलाएं इन्हीं दिनों हुई। रानी रासमणि ने उन्हें अपना गुरु चुनना चाहा लेकिन चुनने से पहले परीक्षा ली। जिन सुंदरियों को उन्हें लुभाने के लिए भेजा था,

रामकृष्ण जी ने उन्हें पिता की भांति स्नेहभरी दृष्टि से देखा। वे सुंदरियाँ "क्षमा करें ठाकुर" कहती हुईं रानी के पास आ गईं। एक अवसर पर रानी ने उनके मार्ग में स्वर्णमुद्राएं बिखेर दी और साथ चलने लगीं। ठाकुर उन मुद्राओं को देखा अनदेखा करते हुए आगे बढ़ गए। रानी ने उधर संकेत भी किया लेकिन ठाकुर यह कहते हुए आगे बढ़ गए कि यह भी माँ का ही प्रसाद है। मिट्टी की तरह ही जमीन पर पड़ा है। एक अन्य अवसर पर कपड़ों में छुपाकर स्वर्णमुद्राएं दी गईं। वस्त्र छूते ही रामकृष्ण ऐसे तिलमिला जैसे दहकता हुआ लोहा पकड़ लिया हो। इसके बादकिसी ने भी उनकी परीक्षा लेने का साहस नहीं किया और और रानी ने उन्हें अपना गुरु स्वीकार कर लिया।

विभिन्न साधना परंपराओं का अभ्यास और उनके शिखर तक पहुँचना रामकृष्ण देव का अनूठा प्रयोग था। राम की उपासना शुरू की तो हनुमान की तरह व्यवहार करने लगे। राम रघुवीर कहते हुए वे वृक्षों पर चढ़ जाते, फल तोड़ते, दांत से काटते और चखकर फ़ेंक देते । प्राणी मात्र में और कण-कण में राम के दर्शन की अवस्था में

पहुँच जाने के बाद साधना को विराम दिया। एक बार सखी बन कर श्रीकृष्ण की आराधना करने लगे। इस भाव से साधना करने वाले साधक अपनेआप को श्रीकृष्ण की सहेलियाँ, गोपियाँ मानते हैं और स्त्रियों की तरह ही रहते हैं। रामकृष्ण भी उसी तरह साधना करने लगे। सखी रूप धारण करने के लिए उन्होंने केश रखवाए,वेणी गूंथने लगे।नाक में बेसर, आँखों में अंजन, माथे पर सिंदूर,बिन्दी और होठों पर लाली लगाने लगे। साधना की प्रगाढ़ अवस्था में वे पुकारने लगते "कहाँ है ललिता, कहाँ है विशाखा। मुझ पर दया करो, मैं अति दीन-हीन हूँ। तुम्हारी दया के बिना मैं राधिका जी का दर्शन नहीं कर सकूँगी और राधिका जी के बिना श्रीकृष्ण तक नहीं पहुँच पाऊँगी।" सखी संप्रदाय की साधना करते हुए रामकृष्ण देव के शरीर में स्त्रियोचित परिवर्तन होने लगे थे। उनकी वाणी मधुर और कोमल होने लगी। आवाज सुनकर उन्हें कोई भी पहचान नहीं सकता था। कुछ दिन बाद उनकी चाल भी बदल गई। वक्ष पर स्त्री जैसे उभार दिखाई देने लगे और पाँव किसी सुन्दर-पतली नारी की तरह संभल संभल कर उठते थे।

साधना की यह स्थिति इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि तन्मय होकर आराधना करने पर व्यक्तित्व में आमूलचूल परिवर्तन आने लगता है, यहाँ तक कि शरीर भी उसी के अनुसार ढलने और बदलने लगता है। सखीभाव की साधना को विराम देने के महीनों बाद ठाकुर सहज स्थिति में पहुँचते थे ।

मार्गदर्शक सत्ता ने गुरुदेव को रामकृष्ण परमहंस देव के संस्मरणों के दर्शन कराये।

चेतना की शिखर यात्रा पार्ट 1, चैप्टर 6

साधनाओं की प्रयोगशाला:

रामकृष्ण परमहंस देव जी विभिन्न संप्रदायों, पंथों की साधना के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि स्वरूप से मार्ग भले ही अलग हों, तात्विक दृष्टि से किसी भी धर्म-सम्प्रदाय में कोई अंतर नहीं है। खालसा पंथ की दीक्षा लेकर उसका मर्म समझा। एक दिन विचार आया कि मालुम किया जाए कि हिन्दू और मुसलमान में क्या भेद है। अपनी इष्ट-आराध्य भवानी से अनुमति माँगी, माँ ने अनुमति दे

दी। टमटमा गाँव में एक सूफी साधक रहता था, उससे दीक्षा ली और साधना की विधि सीखी। तीन दिन साधना के बाद ही भाव बदल गये। उनके अंत:करण से हिन्दू का भाव गायब हो गया। उन्होंने मंदिर में जाना बंद कर काली का प्रसाद नहीं खाया। साधना के दिनों में किसी ने कहा, “इस्लाम के अनुसार जो काफिरों का वध करेगा,वह ही स्वर्ग में सुख से रहेगा। तुम भी क्या काफिरों का वध करोगे ?” रामकृष्ण देव ने कहा,

"काफिर बाहर नहीं रहते,वे हमारे भीतर ही हैं । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि ही हमारे भीतर रहने वाले विजातीय तत्त्व हैं। उनका विनाश करने से ही अल्लाह की मेहरबानी होती है। विद्या और शक्ति ही मनुष्य को सुख देती है। उसके सिवा कोई सुंदरी या अप्सरा नहीं है जो मनुष्य को निरंतर अगाध सुख देती हों।"

ईसाई धर्म की साधना-उपासना का मार्ग भी अपनाया। सब धर्मों और साधना परंपराओं का मर्म ज्ञान समझ लेने के बाद वे अपने स्वभाव में स्थिर हो गए। मुक्त और सिद्ध आत्माओं का वैसे अपना

कोई स्वतंत्र स्वभाव नहीं होता। वे परमात्म चेतना से इस तरह ओत-प्रोत हो जाते हैं कि उनकी अपनी स्वतंत्र सत्ता कहीं दिखाई ही नहीं देती। जिस स्थिति और स्तर का साधक आता है, उसी के अनुरूप वे दिखाई देने लगते हैं। दर्पण की तरह,स्फटिक(quartz) से बने मंदिर की भाँति हो जाते हैं, जो सामने उपस्थित दृश्य या वर्ण को ही अपने स्वरूप में प्रतिबिंबित करने लगता है। रामकृष्ण देव तब विविध साधना धाराओं को ही परख रहे थे ।

पूजा की कोठरी में बैठे श्रीराम को ये दृश्य जीवंत घटनाओं की तरह दिखाई दे रहे थे।

दक्षिणेश्वर मंदिर में भिन्न-भिन्न संप्रदायों के साधक संन्यासी, फकीर, पादरी, आदि आ रहे हैं। किसी दिन 700 नागा साधुओं के प्रमुख “तोतापुरी नामक संन्यासी” आते हैं। इतिहास में उन्हें पंजाब के सिद्ध साधक दर्शाया गया है। चारों ओर उनकी बड़ी ख्याति है। पौष महीने में गंगा सागर से स्नान कर लौटते हुए वे दक्षिणेश्वर में ठहरते हैं और रामकृष्ण देव को देखकर पूछते हैं, “क्या तुम कुछ

साधना करोगे ?” रामकृष्ण देव जी बड़ी ही बाल सुलभ सरलता से कहते हैं, “माँ कहेगी, तो जरूर करेंगे'” तोतापुरी ने समझा कि वे शायद अपनी जननी माता की अनुमति चाहते हैं। तोतापुरी ने कह दिया, “जाओ पूछ आओ।” रामकृष्ण माँ काली के सामने बैठकर पूछने लगे तो उधर से उत्तर आया कर लो। फिर पूछा, “कौन सिखाएगा साधना।” माँ ने उत्तर दिया, “जो तुझे वेदांत सिखाने आया है, वही साधना भी सिखाएगा।” स्वामी रामकृष्ण ने महंत तोतापुरी को सारे का सारा संवाद ज्यों का त्यों कह सुनाया, वे हँसे, फिर कहा, “हमसे उपदेश ग्रहण करना है, तो संन्यासी बनना पड़ेगा।” रामकृष्ण उसी सहजता से पूछते हैं, “संन्यासी होने के लिए क्या करना पड़ेगा।”

कोठरी में अपनी मार्गदर्शक सत्ता के दिव्य सान्निध्य में बैठे श्रीराम अनुभव कर रहे थे, जैसे रामकृष्ण के रूप में वे स्वयं ही यह संवाद कर रहे हों।

तोतापुरी जी संन्यास के बारे में समझाते हैं, उसके लिए श्राद्ध, होम, तर्पण आदि करना पड़ेगा। भगवा वस्त्र पहनना होगा और निरंतर विचरण करते रहना पड़ेगा। रामकृष्ण ने कहा,

"सब स्वीकार है लेकिन भगवा पहने बिना संन्यासी हुआ जाए,ऐसा कुछ कीजिए। मैं यह स्थान छोड़ कर अन्यत्र नहीं जा सकता। मेरी माँ जीवित है। अब उनका और कोई पुत्र नहीं। इसलिए उन्हें छोड़ा नहीं जा सकता।"

तोतापुरी ने स्वीकार कर लिया। संन्यास की तैयारी होने लगी। शिखा सूत्र, कंठी, माला आदि चिह्नों का विसर्जन हो गया। चिता आरोहण और श्राद्ध तर्पण की क्रियाएँ भी संपन्न कर ली गयी, सर्वस्व त्याग का व्रत ग्रहण कर लिया। दीक्षा के बाद तोतापुरी अपने शिष्य को उपदेश देते हैं और समाधि में ले जाने का प्रयत्न करते हैं। स्फटिक की माला से एक मनका अलग निकाला और रामकृष्ण देव को पद्मासन लगाकर बैठ जाने के लिए कहा। शिष्य ने पद्मासन लगा लिया। तोतापुरी ने रामकृष्ण की आँखों के बीच

भौंहों के मध्य स्फटिक का स्पर्श किया। उसे कुछ जोर से दबाया, थोड़ा सा दबाव पड़ना ही था कि रामकृष्ण देव की समाधि लग गई। वे अचेत से हो गये। नाड़ी की गति और हृदय की धड़कन यथावत् चल रही थी लेकिन उन्हें कोई बोध नहीं था। यह अवस्था देखकर तोतापुरी थोड़े डरे। उन्हें लगा कि रामकृष्ण कहीं शरीर न छोड़ दें। बड़ी सावधानी से उन्होंने साधक की देखभाल की। एक दिन बीत गया, दूसरे दिन की शाम भी ढल गयी और तीसरे दिन की सुबह हुई, तब भी रामकृष्ण की स्थिति में कोई अंतर नहीं आया। उन्होंने अपने प्रमुख शिष्यों से कहा तीन दिन तक यदि साधक अपनी सहज अवस्था में नहीं आता तो कठिन हो जाता है। शरीर उस आत्म चेतना को वापस धारण करने योग्य नहीं रह जाता।

लेकिन ठाकुर तो बहुत ही आगे थे:

रामकृष्ण देव के शरीर में तो कोई विकार नहीं आया, तोतापुरी शिष्य ने कहा, “श्वास-प्रश्वास उसी तरह चल रहे हैं,नाड़ी की गति

भी ठीक है। शरीर में कोई विकार नहीं दिखाई देता।" तोतापुरी को चिंता नहीं थी। लेकिन वे विस्मय विमुग्ध थे। कुछ सूझ नहीं रहा था कि क्या करें। सिद्ध गुरु अपने शिष्यों को समाधि से वापस लाने के जो भी उपाय कर सकते, कर लिए। कोई अंतर नहीं आया। थक हारकर वे शांत बैठ गये। यकायक उन्हें कुछ सूझा और अपना मुँह ठाकुर के कान तक ले गये और कहा, " जिसकी तुम्हें प्रतीक्षा है, वह आ गया है रे।" ऐसा सुनना ही था कि रामकृष्ण इस तरह उठकर बैठ गये जैसे किसी ने झकझोर दिया हो । वे आतुर व्याकुल हो उठे और पूछने लगे, "कहाँ है वह? कहाँ है?" तोतापुरी ने कहा, "पहुँच ही रहा होगा।" इसके बाद तोतापुरी बोले,

"तुम तो मुझसे बहुत आगे हो ठाकुर। तुम महापुरुष हो। चालीस वर्ष तक कठोर साधना करके भी मैं जो स्थिति प्राप्त नहीं कर सका, तुमने उसे एक ही दिन में उपलब्ध कर लिया। तुम धन्य हो।"

तोतापुरी वेदान्ती थे। वे मूर्ति पूजा को नहीं मानते थे। अपने शिष्य की सिद्ध अवस्था से चमत्कृत होकर उन्होंने दक्षिणेश्वर मंदिर में

स्थित माँ काली की प्रतिमा को प्रणाम किया। जो संदेश देकर तोतापुरी ने रामकृष्ण को समाधि से जगाया था वह नरेन्द्र (स्वामी विवेकानंद) के बारे में था। जिस यात्रा दिन स्वामी जी रामकृष्ण जी के संसर्ग में आए, उसी दिन रामकृष्ण ने उन्हें सीने से लगा लिया था, फूटफूट कर रोए थे, जैसे वर्षों से गुम हुई संतान को पाकर माता-पिता विह्वल हो उठते हैं। स्वामी जी तब रोजगार की तलाश में थे । मोक्ष पाने की इच्छा अपने चरम पर थी,कभी कभी तो यह इच्छा भूख-प्यास से भी अधिक प्रचंड हो उठती थी। इस इच्छा की तृप्ति के लिए वे साधु संतों के यहाँ भटकते रहते थे रामकृष्ण के यहाँ पहुँचे और गुरु ने उन्हें देखते ही आँखों में भर लिया तो लगा कि खोज पूरी हुई।

इतिहास के पन्ने खोजने से पता चलता है कि स्वामी रामकृष्ण देव जी को स्वामी विवेकानंद जी का आभास लगभग 20 वर्ष पूर्व ही हो गया था। तोतापुरी के साथ हुए संवाद 1864 के हैं और स्वामी जी 1880 को आये थे।

दक्षिणेश्वर की कथा :

रानी रासमणि की कथा उस समय की है जब भारत पर अंग्रेजों का राज था। पश्चिम बंगाल में एक विधवा समृद्ध महिला रहती थी, जिसका नाम था रानी रासमनी । उसके पास पति के सुख के अलावा सारी सुख सुविधाएं थी और वह बहुत ही आध्यात्मिक थी। जब उनकी उम्र होने लगी तब उन्हें तीर्थयात्रा पर जाने को इच्छा हुई, यात्रा की शुरुआत वाराणसी से करने की सोची। उन्होंने सोचा कि वाराणसी में थोड़े समय के लिए रहकर देवी मां का ध्यान करेगी। बात उन दिनों की है जब रेल लाइन की सुविधा न होने के कारण लोग कोलकाता से वाराणसी नाव में जाया करते थे और ये नाव गंगा के रास्ते से ही जाती थी। रानी रासमनी ने भी यही रास्ते से जाने की योजना बनाई लेकिन जाने से एक रात पहले ही रानी को एक सपना आया। सपने में माँ काली प्रकट हुई और माँ ने कहा कि वाराणसी जाने की कोई जरूरत नहीं, तुम गंगा नदी के तट पर ही एक मंदिर का निर्माण करो और उसमे मेरी

प्रतिमा रखो। मैं वहा आने वाले सारे भक्तों की प्रार्थना स्वीकार करूंगी। सुबह होते ही रानी की आंख खुली और उन्होंने वाराणसी जाने का कार्यक्रम रद्द कर दिया। उन्होंने गंगा के किनारे मंदिर बनाने के लिए जगह ढूंढनी शुरू कर दी और जगह मिलने पर मंदिर के निर्माण का काम 1847 में शुरू करवाया जो 1855 में समाप्त हुआ, यही है आज का दक्षिणेश्वर।

मार्गदर्शक सत्ता द्वारा रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद संवाद का चित्रण

चेतना की शिखर यात्रा पार्ट 1, चैप्टर 6

स्वामी रामकृष्ण परमहंस देव जी का स्वामी विवेकानंद जी से प्रथम मिलन 1881 में हुआ था। रामकृष्ण जी ने उन्हें सीने से लगा लिया था। फूटफूट कर रोए थे, जैसे वर्षों से गुम हुई संतान को पाकर माता-पिता विह्वल हो उठते हैं। नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) तब रोज़गार की तलाश में भटक रहे थे। माता पिता ने उनका नाम वीरेश्वर रखा था। मोक्ष पाने का आवेग अपने चरम पर था। यह आवेग पेट की भूख और प्यास से भी अधिक प्रचंड हो उठता था, इतना प्रचंड कि इसकी तृप्ति के लिए वे साधु संतों के यहाँ भटकते रहते थे। रामकृष्ण परमहंस जी के पास पहुँचते ही और गुरु के स्नेह को देखते ही उन्हें ऐसा लगा कि खोज पूरी हुई।

उन्होंने पूछा, " क्या आपने ईश्वर को देखा है ?" जिस वेग से प्रश्न आया था, उससे भी प्रचंड वेग से उत्तर मिला, "तुम देखना चाहते

हो क्या?” नरेन्द्र ने अब तक कितने ही संन्यासियों और योगियों से यही प्रश्न पूछा था। इतने विश्वास और वेग के साथ किसी ने जवाब नहीं दिया। कोई कहता- हाँ देखा है लेकिन उस हाँ में विश्वास का बल नहीं होता था। कोई कहता, अगर कहें कि देखा है तो यह अपनी स्थिति का ढिंढोरा पीटना हुआ। यदि मना करते हैं तो उत्तर गलत हो जाएगा। इसलिए कुछ नहीं कहना ही ठीक है। तुम अपनी जिज्ञासा बताओ हम समाधान देने का प्रयास करेंगे इत्यादि इत्यादि।

नोबल पुरस्कार विजेता कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर से भी उन्होंने यही प्रश्न पूछा था। महर्षि देवेन्द्रनाथ नदी की धारा में नाव पर विश्राम कर रहे थे। नरेन्द्र नाथ तैर कर नाव पर आ गए और धम्म से भीतर कूदे। कूदते ही उन्होंने महर्षि से ईश्वर के बारे में पूछा । नरेन्द्रनाथ के प्रश्न से देवेन्द्र हड़बड़ा गये, उन्हें लगा जैसे कोई कालर पकड़ कर पूछ रहा हो। नरेन्द्र ने अपनी उत्कंठा को पूरी तरह व्यक्त करते हुए ही पूछा था। उसमें डराने जैसा कोई रंग नहीं था, लेकिन उनकी उत्कंठा ने ही

योगी को अचकचा दिया था। वह कहने लगे, “पहले बैठो तो सही, शांत हो कर बैठो। मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ।” इस व्यवहार ने नरेन्द्र नाथ को आभास करा दिया कि मेरे प्रश्न का उत्तर इनके पास नहीं है। यह कह कर वे वापस चले आए कि अब आपको कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। मुझे उत्तर मिल गया है।

देवेन्द्रनाथ ठाकुर शिक्षा प्रसार में बहुत रूचि लेते थे, उन्होंने भारत के भिन्न भिन्न स्थानों पर विशेषकर बंगाल में कई शिक्षा संस्थान खोले। 1863 में बोलपुर में एकांतवास के लिए 20 बीघा भूमि खरीदी और वहां आत्मिक शांति अनुभव होने के कारण इसका नाम “शांतिनिकेतन” रख दिया। परम पूज्य गुरुदेव ने भी युगतीर्थ शांतिकुंज की स्थापना इसी शांति का अनुभव करने हेतु की थी। कनाडा में मनोरम दिव्य वातावरण में विकसित हो रहे शांतिवन का भी यही प्रयोजन है।

स्वामी विवेकानंद जी सिद्ध योगियों के व्यवहार और रुख से ही अपने प्रश्न का भविष्य समझ लेते थे, रामकृष्ण परमहंस के सान्निध्य

में पहुँचकर उनकी भटकन भरी यात्रा को एक तरह का विराम ही लग गया था। ठाकुर ने नरेन्द्र से कहा, “जो माँगना है अपनी माँ से स्वयं ही माँग लेना, मुझसे कुछ मत कहना।” जिस समय रामकृष्ण परमहंस जी ने यह बात कही थी, तब नरेन्द्र के मन में अपने परिवार के निर्वाह की चिंता घुमड़ रही थी। गुरु के कहने पर वे मंदिर में माँ की प्रतिमा के पास गये तो सही लेकिन कुछ माँगते नहीं बना। माँ के मनोहारी रूप ने उन्हें इतना भाव विभोर कर दिया कि वे माँगने की बात ही भूल गये। बिना कुछ कहे वापस चले आए। रामकृष्ण जी ने उन्हें दो बार और मंदिर में भेजा। दोनों बार वे फिर बिना कुछ मांगे वापस आ गये। इसके बाद गुरु ने कहा “तू माँ का काम कर,माँ तेरी सारी चिंताओं का ख्याल अपनेआप रखेगी। परिवार के लिए मोटे झोटे की कमी कभी नहीं रहेगी।” हमारे गुरुदेव का भी तो यही सन्देश है “तू मेरा काम कर, मैं तेरा काम करूँगा” स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस से 1881 में मिले थे, उस समय उनकी आयु केवल 18 वर्ष की थी। इस दिव्य

मिलन के केवल पाँच वर्ष बाद ही 1886 में ठाकुर ने शरीर छोड़ दिया।

शरीर छोड़ना भी जैसे किसी दैवी योजना का हिस्सा था। एक दिन उन्होंने शिष्यों से कहा,

“सुनो,अब मैं लोगों के साथ ज्यादा बात नहीं कर सकूँगा इसलिए माँ से निवेदन किया है कि नरेन्द्र, राजा (राखाल महाराज), तारक, बाबू (बाबूराम), योगीन, शशि आदि शिष्यों को शक्ति दे। अब आगे से यही लोग भक्तों को उपदेश दिया करें।”

इस घोषणा के कुछ ही दिन बाद गले में पीड़ा उठने लगी, पीड़ा इतनी बढ़ गयी कि भोजन करने में कठिनाई होने लगी। रोग बढ़ता गया, भक्तों ने उपचार के लिए कहा । रामकृष्ण कहने लगे,

“माँ की इच्छा है, वह चाहेगी, तो रोग ठीक होगा, वरना कितना ही उपचार करो, कुछ नहीं होने वाला।”

उपचार नहीं कराने के पीछे औषधियों के निर्माण में बरती जाने वाली क्रूरता मुख्य कारण था। भक्तों ने दबाव डाला कि जिन

औषधियों में पशु हिंसा नहीं हुई हो, उनका उपयोग किया जाय। होम्योपैथी और आयुर्वेदिक चिकित्सा शुरू हुई। उनसे कुछ लाभ नहीं हुआ। हालत ज्यादा बिगड़ने लगी। एक दिन ठाकुर ने कहा, “जब रोग मिटता ही नहीं,तो इसके लिए कष्ट सहने की क्या आवश्यकता है, माँ को क्यों कष्ट दिया जाय। उस दिन ठाकुर ने भोजन भी नहीं किया। माँ शारदामणि की लाई हुई भोजन की थाली वापस कर दी। माँ ने भक्तों को ढाढ़स बंधाया और कहा ठाकुर ने शरीर छोड़ने का निश्चय कर लिया है।16 अगस्त 1886 को लीला का संवरण हुआ था, दिन भर सहज दिखाई दिए। शाम को भरपेट भोजन किया। आधी रात बीत जाने के बाद करीब एक बजे रामकृष्ण परमहंस ने अपनी लीला का संवरण कर लिया। उनके शिष्यों ने ठाकुर का सौंपा हुआ दायित्व निभाने का संकल्प लेते हुए गुरु के पार्थिव अवशेषों को श्रद्धाभक्ति से प्रणाम किया और उन्हें समाधि दी गयी।

ऑनलाइन उपलब्ध सूत्रों के अनुसार रामकृष्ण परमहंस जी की मृत्यु clergyman's throat नामक बीमारी से हुई जिसने बाद में

throat cancer का रूप ले लिया। Clergyman का हिंदी शाब्दिक अर्थ पादरी होता है, शायद इस बीमारी का सम्बन्ध प्रवचनों के साथ जुड़ा हो।

दादा गुरु के निर्देश

पूजा की कोठरी में बैठे श्रीराम इन दृश्यों की यात्रा करते हुए चुपचाप बैठे रहे। जब स्मृतियों से बाहर आए और सामने प्रसन्न मुद्रा में खड़ी मार्गदर्शक सत्ता को निहारा, जब स्मृतियों से बाहिर आये तो ऐसा अनुभव हुआ जैसे कि बहुत दूर की यात्रा कर ली हो। जिस प्रकार अन्यत्र और निरंतर यात्रा करने के बाद शरीर और मन थक सा जाता है, वैसी ही बल्कि उससे कई गुना ज्यादा थकान अनुभव होने लगी। कुछ ही पलों में 600 वर्षों का जीवन जी लिया, इस अवधि में लिखे गये शब्द या अंकित किये गये दृश्यों का अवलोकन करने में जितना समय और श्रम लग सकता है, उसका दबाव चित्त पर अनुभव हो रहा था। प्रकट तौर से देखा जाये तो केवल कुछ घंटे(शायद 6 घंटे) ही बीते थे। पांच सात मिनट की नींद में कभी जन्म-जन्मांतर की यात्रा कराने वाले दृश्य भी चेतना में उभर आते हैं। समय का जो विस्तार वर्तमान स्थिति में अनुभव होता है, वह स्वप्न, समाधिभाव और अंतर्यात्रा के समय प्रतीत होने

वाले विस्तार से सर्वथा भिन्न है। किशोर श्रीराम की अंतर्यात्रा भी सूक्ष्म और दिव्य विस्तार में प्रवेश की यात्रा थी लेकिन जब वे वर्तमान में लौटे तो थकान ने घेर लिया। मार्गदर्शक सत्ता ने इस थकान को दूर करने के लिए दाँया हाथ आगे बढ़ाया, उसका अंगूठा दोनों भौंहों के मध्य में रखा और चारों उँगलियाँ सिर के उस भाग पर रखा जिसे योगीजन सहस्रार या ब्रह्मरंध कहते हैं। इस स्पर्श ने श्रीराम की थकान और नींद को दूर कर दिया। श्रीराम की चेतना में स्फूर्ति लहराने लगी। एक नया जगत सामने प्रस्तुत हो गया, एक ऐसा जगत् जिसमें आलोक भरा हुआ पूजा का कक्ष, गुरुदेव और वातावरण में दिव्य गंध की व्याप्ति अनुभव हो रही थी।

दादा गुरु कह रहे थे,

"जो कबीर था, जो रामदास था और जो रामकृष्ण था, वही तुम हो। यह अंतर्दर्शन थकाने या चमत्कृत करने के लिए नहीं है।

प्रकाश की भांति ही दिखाई दे रही उस मार्गदर्शक सत्ता के होंठ हिले। उस कंपन से जो निर्देश प्रस्फुटित हो रहे थे, उनमें कोई ध्वनि

नहीं थी। परावाणी भी नहीं कह सकते, क्योंकि उसके लिए होंठों के कंपन भी आवश्यक नहीं। नाभि या हृदय से उद्धृत पश्यंती स्तर की यह वाणी केवल उसी व्यक्ति को सुनाई देती है, जिसके लिए वह कही गयी होती है। दादा गुरु कह रहे थे कि अभी तुम्हारे लिए एक ही प्रेरणा है, इसे निर्देश भी मानें और यह प्रेरणा है- साधना। सहज और सामान्य भाव से बैठे श्रीराम के मन में जिज्ञासा उठी। उसे कौतूहल भी कह सकते हैं। मार्गदर्शक सत्ता से प्रथम दृष्टि में ही परिचय इतना प्रगाढ़ हो गया कि अटपटा प्रश्न पूछने में भी कोई संकोच न हो।

मार्गदर्शक सत्ता ने बालक श्रीराम को कौन से निर्देश दिए -पार्ट 1

चेतना की शिखर यात्रा पार्ट 1, चैप्टर 6

“हम तो आपको खोजने के लिए नहीं गए थे। आपने हमें क्यों ढूँढा और फिर यह साधना के निर्देश क्यों दे रहे हैं।”

यह कहते कहते बालक श्रीराम के होंठों पर मुस्कान खिल उठी। मार्गदर्शक सत्ता भी मुसकराई। घनी और लंबी मूछों के पीछे छुपे ओठों पर वह मुसकान साफ दिखाई दे रही थी। उन्होंने कहा,

"गुरु ही शिष्य को खोजता है, शिष्य गुरु को नहीं। पिछले कई जन्मों की यात्रा तुमने इस शरीर के साथ सम्पन्न की है। इसके साथ अंगुली पकड़ कर चले हो। अब होश संभाला और यात्रा करने की स्थिति में आए तो हमने तुम्हें पकड़ लिया। उस दिव्य आभा मंडल से जब यह शरीर संबोधन सुनाई देता था तो संकेत उस आभामंडल की ओर ही होता था। यह तुम्हारा दिव्य जन्म है। इस जन्म में भी हम तुम्हारा मार्गदर्शन करेंगे, सहायक रहेंगे। तुमसे वह सब कराएँगे जो युग धर्म की स्थापना के लिए आवश्यक है।"

उस दिव्य आत्मा ने श्रीराम के इस जीवन का क्रम निर्धारण जैसे पहले ही कर रखा था,कहने लगे:

"ईश्वर को जिनसे जो काम लेना होता है,उसके लिए आवश्यक बल और साधन भी पहले से ही तैयार रहते हैं लेकिन वे अनायास ही

नहीं मिल जाते। उनके लिए साधना का पुरुषार्थ करना ही पड़ता है। आज से ही, बल्कि अभी से ही अपनेआप को विशिष्ट साधना में कस कर बाँध लो। साधना का एक चरण चौबीस वर्ष तक “महापुरश्चरण” की श्रृंखला चलाने के रूप में है। एक वर्ष में गायत्री महामंत्र के 24 लाख (24,00,000) जप का एक महापुरश्चरण संपन्न करना है। केवल आहार विहार में संयम ही पर्याप्त नहीं है,उसके लिए तपश्चर्या का अनुशासन भी अपनाया जाना चाहिए। वह अनुशासन नियत कर दिया गया है। जौ के आटे से बनी हुई रोटी और गाय के दूध से बना मठा। शरीर चल जाए इतना ही आहार लेना है। सौंपे गये कार्यों के लिए जितना स्वास्थ्य और शक्ति चाहिए, उसकी पूर्ति दिव्य शक्तियाँ करती रहेंगी।”

पुरश्चरण की परिभाषा :

लेखक के ह्रदय में पुरश्चरण की परिभाषा जानने की जिज्ञासा उठी कि हम रोज़मर्रा जीवन में महापुरश्चरण, अनुष्ठान इत्यादि शब्द प्रयोग करते रहते हैं, आखिर इनका अर्थ क्या है। गायत्री

महाविज्ञान के द्वितीय भाग के पृष्ठ 248 पर परमपूज्य गुरुदेव ने बहुत ही साधारण शब्दों में उदाहरण देकर लेखक की जिज्ञासा का समाधान किया है जिसे आपके समक्ष रखा जा रहा है:

गुरुदेव बताते हैं कि पुरः कहते हैं पूर्व को (अर्थात् आगे की ओर) और चरण कहते हैं चलने को। चलने से पूर्व की जो स्थिति है, तैयारी है, उसे पुरश्चरण कहा जाता है, चलने के तीन भाग हैं (1) गति, (2) आगति,(3) स्थिति। गति कहते हैं बढ़ने को, आगति कहते हैं लौटने को और स्थिति कहते हैं- ठहरने को । पुरश्चरण में यह तीनों ही क्रियायें होती हैं। जब किसी विशेष उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये जो साधना की जाती है तो उसके साथ-साथ उन दोषों को लौटाया भी जाता है जो प्रगति के मार्ग में विशेष रूप से बाधक होते हैं। इस गति-आगति से पहले शक्ति को प्रस्फुटित (explosion) करने के लिये जिस स्थिति को अपनाना होता है, वही पुरश्चरण है। सिंह जब शिकारी पर आक्रमण करता है, तो एक क्षण ठहरकर हमला करता है । धनुष पर बाण को चढ़ा कर जब छोड़ा जाता है, तो थोड़ा रुककर बाण छोड़ा जाता है । बन्दूक का

घोड़ा दबाने से पहले जरा-सी देर करके शरीर को साधकर स्थिर कर लिया जाता है ताकि निशाना ठीक बैठे। इसी प्रकार अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिये पर्याप्त मात्रा में आत्मिक बल एकत्रित करने के लिये कुछ समय के लिए आन्तरिक शक्तियों को फुलाया और विकसित किया जाता है, इसी प्रक्रिया का नाम पुरश्चरण है।

दादा गुरु द्वारा उपासना का जो क्रम निर्धारित हुआ, वह कम से कम 6 घंटे चलने वाला था। मार्गदर्शक सत्ता ने जिस दिन साधना में नियोजित किया उस दिन वसंत पंचमी थी। निर्धारित उपासना संपन्न हो चुकी थी। जप निवेदन के बाद विसर्जन और समर्पण का विधान ही शेष रह गया था। 15 वर्षीय श्रीराम ने उस उपचार को स्थगित किया और निर्दिष्ट क्रम के अनुसार आगे का जप आरंभ किया। एक वर्ष में 24 लाख जप का अनुष्ठान सम्पन्न करने के लिए 66 मालाओं का जप (लगभग 7000 बार गायत्री मंत्र का उच्चारण) आवश्यक है। साधारण गणित के अनुसार

66(मालाएं) x 108(मनके,beads) x 365(वर्ष के दिन) = 26,01,720 (लगभग 26 लाख)

उस दिन श्रीराम सूर्योदय के बाद करीब 5 घण्टे तक और बैठे रहे, साधना करते रहे। जप कब पूरा हो गया, कुछ पता ही नहीं चला। जप और सविता देवता के ध्यान के समय साधना के संबंध में तरह-तरह की जिज्ञासाएँ उठीं। उन्हें पूछने के लिए शब्द नहीं तलाशने पड़े। बिना पूछे ही प्रश्न संप्रेषित हो गए और उस दिव्य आत्मा के सान्निध्य में समाधान भी अपने आप होते गये।

एक जिज्ञासा थी गुरुदेव कहाँ रहते हैं? उत्तर आया :

“हिमालय के हृदय देश में। इस प्रदेश में सामान्य शरीर से किसी मनुष्य का भी पहुँच पाना संभव नहीं है क्योंकि स्थूल शरीर की कुछ सीमा होती है। वह तो सामान्य दुर्गम प्रदेशों में भी नहीं जा सकता। ‘हिमालय का हृदय प्रदेश’ कहे जाने वाले क्षेत्र में तो असम्भव ही है। सामान्य सूक्ष्म शरीर से पहुँचना भी मुश्किल है। उस क्षेत्र मे व्याप्त तेजस् और वर्चस् का प्रभाव साधारण स्थिति के

अस्तित्वों को दूर से ही ठेल देता है। कारण यह है कि उस क्षेत्र में आत्म चेतना के प्रयोग परीक्षण चलते रहते हैं।"

समाधान के अगले चरण में यह भी स्पष्ट हुआ कि गुरुदेव का स्थूल स्वरूप सैंकड़ों वर्ष पुराना है। उसका परिचय और इतिहास लगभग अविज्ञात है। उस शरीर से किए गये काम ही आज उनका परिचय बने हुए हैं। इतिहास की खोजबीन की जा रही है लेकिन अभी भी अधूरी है। कुछ प्रमाणों के अनुसार उनका दैहिक स्वरूप 650 या 700 वर्ष पुराना है। कुछ के अनुसार 2500 वर्ष से भी अधिक पुरातन है।

अनुष्ठान के पहले दिन, प्रारंभ में ही उत्कंठा जगी कि उस स्वरूप का परिचय प्राप्त किया जाए लेकिन उत्तर में एक सन्नाटा ही सुनाई दिया। उस सन्नाटे में सिर्फ एक ही बोध तैर रहा था कि सर्व के अधिपति ईश्वर की सत्ता का जो निर्विकार आनंद है, वही मार्गदर्शक के परिचय का प्रतीक है। हृदय प्रदेश के जिन साधकों

या सिद्धों ने अपनी सूक्ष्म उपस्थिति के प्रमाण दिये थे, उन्होंने मार्गदर्शक, दादा गुरु का नाम स्वामी सर्वेश्वरानंद बताया था।

बालक श्रीराम और मार्गदर्शक सत्ता के दिव्य सूक्ष्म संवाद

चेतना की शिखर यात्रा पार्ट 1, चैप्टर 6

स्थूल शरीर की सीमा और आवश्यकता

गुरुदेव जैसे कह रहे थे, स्थूल से एक सीमा तक ही काम किया जा सकता है। वे कितने ही महान् और विराट् हों, उनसे दिव्य प्रयोजन सिद्ध नहीं होते। दिव्य प्रयोजनों के लिए शरीर को सूक्ष्म स्तर तक ले जाना और सिद्ध करना पड़ता है । कठोर तपश्चर्या का उद्देश्य शरीर को सूक्ष्म स्तर तक ले जाना ही है।

बिना कुछ बताये ही एक प्रश्न उठा कि

अगर स्थूल शरीर की विशेष उपयोगिता नहीं हैं तो इस शरीर का क्या लाभ और इसे क्यों बचाए क्यों रखा जाए? सीधे सूक्ष्म में ही विलय क्यों नहीं कर दिया जाए:

इस प्रश्न का समाधान भी जैसे हिमालय हृदय प्रदेश से ही आया हो। स्थूल शरीर का भी अपना महत्त्व है। यह सत्य है कि स्थूल शरीर की बहुत सी शक्ति तो शरीर की आवश्यकताएँ जैसे रोग, बीमारी, वृद्धावस्था में आने वाली स्थिति इत्यादि जुटाने में ही लग जाती है। शरीर की अधिकांश ऊर्जा इसे संभालने और चलाने में ही खर्च हो जाती है। लेकिन इसका कतई अर्थ नहीं है कि स्थूल शरीर का कोई भी उपयोग है। दिखाई देने वाले काम इस स्थूल शरीर से ही पूरे होते है। लोगों से मिलना-जुलना, अभीष्ट बदलाव लाना और इस संसार में आदान प्रदान को गति देना स्थूल शरीर से ही संभव है। भगवान् को भी जब अपनी लीलाओं का आनंद लेना होता है, तो वे तन्मात्राओं से ही अपने स्थूल शरीर की रचना करते हैं।

आइए आगे चलने से पहले तन्मात्राओं के बारे में जान लें।

तन्मात्राओं का अर्थ वह पांच तत्व होते हैं जिनसे हमारा शरीर बना हुआ है। यह पांच तत्व हैं : पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। विज्ञान के अनुसार यह सब एनर्जी की ही different

forms हैं और law of conservation of energy के अनुसार एक फॉर्म को दूसरी फॉर्म में बदल सकते हैं जैसे कि जल से भाप यां जल से बर्फ। इसलिए सूक्षम को स्थूल यां स्थूल को सूक्ष्म में बदला जा सकता है। पुराणों में उल्लेख है कि प्राचीन काल के योगी तपस्वी ऋषिकल्प आत्माएँ न केवल सूक्ष्म शरीर से आवागमन करने में समर्थ थी, वरन् इच्छानुसार रूप धारण करने और जब चाहे अदृश्य होने और पुनः प्रकट हो जाने की विभूतियों से भी सम्पन्न थीं। ईश्वर पर दृढ़ आस्था एवं साधना से अपने जीवन को बहुत ही पवित्र बनाया जा सकता है। इस साधना के आधार पर unlimited शक्तियाँ विकसित की जा सकती हैं, इच्छानुसार अदृश्य या प्रकट हुआ जा सकता है। परम पूज्य गुरुदेव के बारे में भी वर्णन मिलता है कि वह एक ही समय पर कई जगहों पर देखे गए थे। अफ्रीका यात्रा के दौरान परिजनों ने इस तरह के दृश्य प्रतक्ष्य देखे थे।

श्रीराम के मन में अगला प्रश्न उठा कि जिस क्षेत्र में दादा गुरु का, मार्गदर्शक सत्ता का निवास है, क्या वहाँ जाया जा सकता है? मन

में यह प्रश्न उठा ही था कि तत्क्षण यानि उसी क्षण उत्तर आया। तत्क्षण कहना भी गलत होगा क्योंकि प्रश्न उठते ही समाधान भी आ गया । चेतना में समय और सीमा तो रह नहीं गई थी। इसलिए यह भी कहा जा सकता है प्रश्न और उत्तर में पहले शायद उत्तर ही आया हो। उत्तर मिला कि उचित समय आने पर तुम्हारा परिचय देवात्मा हिमालय से भी कराया जाएगा। इस शरीर और स्वरूप की कठिनाई है क्या है यह भी बताया जायेगा। तुम्हें स्मरण होना चाहिए कि वस्तुत: तुम उसी हिमालयी क्षेत्र के निवासी हो और एक विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए यहाँ भेजे गये हो। लौकिक कार्य संपन्न करने हैं, इसलिए शरीर पर थोड़ा आवरण डाल दिया गया है।

हिमालय का यह हृदय प्रदेश कैलाश के पास स्थित है। वह कैलाश नहीं, जिसे लोग नक्शे पर चिह्नित करते हैं। सिद्ध जनों का कैलास सर्वथा भिन्न और विलक्षण है। संत-महापुरुष गोमुख के आस-पास निवास करते हैं । केदार क्षेत्र में भी उनके लिए उपयुक्त स्थान है। वहाँ रहकर वे सूक्ष्म लोक में जाने की तैयारी करते हैं। सभी लोग

नहीं पहुँच पाते। इक्का-दुक्का ही जा पाते हैं। गीता के इस वचन की तरह कि हजारों मनुष्यों में कोई एक ही उसकी प्राप्ति के लिए यत्न करता है। उन यत्न करने वालों में भी कोई एक ही उपलब्ध हो पाता है। "हिमालय का हृदय" अध्यात्म चेतना के ध्रुव केन्द्र तक पहुँचने के बारे में भी यही समझना चाहिए। दिया गया साधना क्रम ठीक से चलने के बाद तुम्हें वहाँ बुलाया जाएगा। चार-चार दिन की अवधि के लिए वहाँ रहना होगा। हम "मार्गदर्शक सत्ता" के रूप में साथ रहेंगे। सूक्ष्म शरीर धारण करने और उससे कहीं भी गति करने, प्रवेश पाने में कोई कठिनाई नहीं होगी। वैसी सुविधा व्यवस्था बना दी जाएगी। प्रथम प्रयास के बाद तुम्हें अनुभव होगा कि सूक्ष्म रूप कितना समर्थ और सक्षम है। दोनों शरीरों की समर्था और सत्ता का अनुभव करने के बाद तुम्हें आसानी रहेगी। तुम समझ सकोगे कि ऋषिगण अपने संकल्पों को कैसे पूरा करते हैं। सौंपे गये महत्कार्य को संपन्न करने की क्षमता भी तुम उन ऋषिसत्ताओं के सान्निध्य में जाकर जाग्रत् कर सकोगे।'

पुरश्चरण साधना में नियुक्त किए जाने के दिन दो काम और सौंपे गए। आइए देखें कौन से थे यह दो काम।

यह दोनों काम महानुष्ठान के ही भाग थे लेकिन उनका स्वरूप लौकिक ज्यादा था। प्रकाशपुंज से प्रेरणा आ रही थी कि गाँव समाज में जो भी गलत होता दिखाई दे उसका विरोध करना है। उसे नहीं होने देना है और ऐसी तैयारी जुटानी है कि आगे भी नहीं हो सके। इसके लिए लोगों को समझा-सिखा कर तैयार करना है। दिव्य सत्ताएं भारत को विदेशी दासता से मुक्त कराना चाहते हैं, भगवान् की इच्छा से विश्व में भारत को नई भूमिका निभानी है। आने वाली शताब्दियाँ भारत के गौरव को फिर से प्रतिष्ठित करेंगी। इसके लिए भारत का स्वतंत्र होना आवश्यक है। दिव्य सत्ताओं की प्रेरणा से जनमानस में स्वतंत्रता का उभार आ रहा है। उभार को समर्थ बनाने में तुम भी सहयोगी बनो।जहाँ आवश्यक हो, वहाँ सक्रिय-विरोध किया जाए। साधारण स्थितियों में लोगों को तैयार करने के लिए वाणी और लेखनी का सहारा लिया जाए। भगवान् का संदेश पहुँचाने के लिए और भी उपाय हो सकते हैं, उन सबको

अपनाया जाए। श्रीराम के मन में इस प्रेरणा के उभरते समय मन में अन्यथा विचार भी सिर उठा

ते थे। देश में 30-32 (1926 की जनसँख्या) करोड़ लोग रहते हैं, उन सबको समझाने-सिखाने में कितना समय लगेगा। हमारे अकेले से यह कैसे संभव हो पायेगा। हम कितने भी समर्थ और शक्तिशाली हो जाएँ,करोड़ों लोगों को जगाने का काम हमें अकेले ही करना है और अगर यह भगवान् की ही इच्छा है तो वे लोगों के मन में वैसी प्रेरणा अपनेआप क्यों नही जगाते? जैसे ही विचार प्रवाह आगे बढ़ता,दिव्य प्रेरणा ने उसे रोका।

प्रतिविचार आने लगे, सांस लेने और चलने की तरह भगवान् बंधन-मुक्ति की प्रेरणा भी अपनेआप ही उभार सकते हैं, लेकिन भगवान की योजना मनुष्य को "पुरुषार्थी" बनाने की है। जो धर्मयुद्ध अगले दिनों लड़ा जाना है, उसमें सभी को भागीदार बनना है। जरूरी नहीं कि सभी लोग महायोद्धा हों। रीछ-वानरों और गिलहरी जैसे तुच्छ कहे जाने वाले प्राणियों को भी हिस्सा लेना है।

छोटी-बड़ी, अच्छी-बुरी,पक्ष-विपक्ष सभी की भूमिकाएं निश्चित की जा चुकी हैं। जय-पराजय भी निश्चित हो गई। तुम्हें लोगों तक सिर्फ संदेश पहुँचाना है। यह मत सोचो कि अकेले क्या कर पाओगे, केवल यह सोचो कि तुम क्या कर पाओगे। संगी- साथियों का एक विशाल समुदाय तुम्हारी प्रतीक्षा करता हुआ दिखाई देगा। समय के साथ वह फैलता जाएगा, तुम्हें उनका मार्गदर्शन करना है।

स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी और लोक शिक्षण की योजना ने जैसे अंतिम रूप ग्रहण कर लिया । विचार और संकल्प विकल्प के साथ ध्यान और सन्निधि का प्रवाह पूरी अवधि में ही बहता रहा। चित्त कभी सविता देवता के ध्यान में डूब जाता, कभी लगता कि उनके तेज में अपना आपा खो गया है, सब कुछ जल कर भस्म हो गया है। कुछ पल बाद अपनी स्वतंत्र चेतना का फिर भान होने लगता लेकिन वह ज्यादा परिपक्व और समर्थ अनुभव होती अनुभव हुई पहले की तुलना में अधिक सुदृढ़। जैसे चेतना का रसायन(chemical) बदल रहा हो, वह कुछ की कुछ होती जा रही हो । इस प्रक्रिया में अपनी मार्गदर्शक सत्ता भी सामने ही उपस्थित

अनुभव दिखती रही। रस-रसायन की यह प्रक्रिया उन्हीं की देख रेख में सम्पन्न होती लगी। इस तरह की प्रतीतियों में कई बार बदलते दृश्य, बदलते पुस्तकों के पन्ने बदलने और उलटने-पुलटने जैसी अनुभूति होती रही। कभी यह तो कभी वह दृश्य दिखाई देता।

इस बीच माँ (ताई जी) ने पूजा की कोठरी में कई बार झाँका। सूर्य का सिंधूरी वर्ण बदलते ही श्रीराम अपनी संध्या पूरी कर उठ आते हैं। आज क्या हो गया? संध्या अभी तक संपन्न क्यों नही हुई? कहीं पिछले दिनों की भांति लगी समाधि जैसी अवस्था में तो नहीं पहुँच गया? उस समय तो श्रीराम के पिता जीवित थे, सब विधि-विधान जानते थे, समाधि से वापस ले आये थे। अब फिर वैसी ही समाधि लगाई तो कौन वापस लाएगा? माँ को तरह-तरह की चिंताएँ सताए जा रही थीं। इधर नए साधना क्रम का आरंभ करते हुए श्रीराम अपनी मार्गदर्शक सत्ता को सामने ही अनुभव कर रहे थे। उनकी उपस्थिति मन, प्राण और चेतना में रमती जा रही थी।

माँ ने उलाहना दिया

श्रीराम की माता जी से अब सहन नहीं हुआ, कहने लगी :

“आज पूरे दिन कोठरी में बैठे रहोगे क्या ? जगन्माता को विश्राम तो करने दो श्रीराम ।”

गुरुसत्ता के सानिध्य का वह अध्याय पूरा होने के बाद यथार्थ जगत् का पहला अनुभव माँ की यह पुकार थी। कोठरी में कई बार झाँक जाने के बाद उनसे रहा नहीं गया।अपनी समझ से उन्होंने लाड़ले को जगाने की चेष्टा की और श्रीराम ने उठने का उपक्रम किया। माँ अपने दुलारे को उठने की तैयारी करते देख वापस चली गई। वेदी पर रखे दीपक में श्रीराम ने कुछ घी और डाला। अब तक का क्रम था कि पूजा संपन्न होने के बाद दीपक को जलते रहने दिया जाता । घी समाप्त होने के बाद बत्ती पूरी जल जाती और दीपक की लौ हवा में लीन हो जाती। नए सिरे से घी डालने का अर्थ था ज्योति प्रचलित रहेगी। गुरुदेव का बताया हुआ विधान व्यवहार में उतर आया था।

महापुरश्चरण साधना के साथ अखण्ड ज्योति का भी अवतरण उसी दिन वसंत पंचमी पर संपन्न हुआ। तभी से यह अखण्ड दीपक प्रज्वलित है। आगरा, मथुरा होकर यात्रा करता हुआ यह दिव्य दीपक 2026 में 100 वर्ष पूरे कर लेगा। सन् 1971 से यह शांतिकुञ्ज (हरिद्वार) में स्थापित है। जो भी परिजन शांतिकुंज जाते हैं इस दीपक के दर्शन अवश्य करते हैं।

श्रीराम ने सामने विराजमान जगन्माता को प्रणाम किया, उस दिन विसर्जन नहीं किया। संध्या गायत्री के सामान्य जप में आवाहन के बाद विसर्जन की प्रक्रिया भी सम्पन्न की जाती है। महापुरश्चरण में विजर्सन नहीं किया जाता क्योंकि वह सतत चलते रहने वाला अनुष्ठान है। अगर दैनिक उपासना को एक ही दिन में पूरा हो जाने वाला अध्याय कहा जाए तो महापुरश्चरण एक विराट् ग्रंथ के अखंड पाठ की तरह है जिसमें कितने ही अध्याय होते हैं। उन सबके अवगाहन में लम्बा समय चाहिए। जब तक पूरा नहीं हो जाता, देवशक्तियों की अर्चना-अभ्यर्थना चलती ही रहती है। उनकी उपस्थिति का सम्मान किया जाता है। अपना आचरण, चिंतन और

स्तर उनकी गरिमा के अनुरूप रखने की सावधानी रखी जाती है। प्राणपण से उनका निर्वाह किया जाता है। अखण्ड दीपक की स्थापना और निरंतरता उस उपस्थिति के स्थूल प्रमाण के रूप में था। जब श्रीराम पूजा गृह से बाहर आए, तो माँ ने फिर वही उलाहना सा दिया

"गायत्री माता से इतनी देर क्या कहता रहा? उन्हें भी चैन लेने देगा या नही?"

ऐसा कहते कहते ताईजी के चेहरे पर दुलार छलक आया। उसमें कहीं न कहीं यह गर्व और संतोष भी छलक रहा था कि पुत्र अपने पितृ पुरुषों की राह पर चलने की तैयारी कर रहा है। उनके हिसाब से पूजा-पाठ की अगली कड़ी पुरोहिताई और कथा वार्ता ही होनी चाहिए। श्रीराम ने कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप कुछ सोचते रहे। माँ ने फिर पूछा, "क्या कहा गायत्री माता ने? तुमने उनसे इतनी लम्बी पूजा करके क्या माँगा?" श्रीराम ने कहा,

”कुछ नहीं माँगा माँ, संध्या करते समय हमारे गुरुदेव प्रकट हो गए थे। उन्होंने आगे का रास्ता बताया कि क्या करना है? उनके बताए रास्ते पर चलना है ?” ताई जी ने पूछा, “क्या रास्ता बताया उन्होंने? कहीं तू मुझे दिया वचन तो तोड़ने नहीं जा रहा। तेरे गुरुदेव ने क्या संन्यासी बनने के लिए कहा है?” ताई जी अधीर हो उठीं। श्रीराम ने उन्हें धीरज बँधाया और कहा,

“नहीं माँ नहीं।गुरुदेव ने आपके पास रह कर ही साधना करने के लिए कहा है। पाँच छ: घंटे रोज प्रतिदिन जप-ध्यान करूँगा। गुरुदेव ने कहा है कि चौबीस वर्ष तक साधना करनी है। गाय के दूध से बनी छाछ और जौ की रोटी का आहार लेना है। पूजा की कोठरी में वह जो दीपक जल रहा है न, उसे अखंड ही रखना है। दीपक में घी हमेशा भरा रहे।”

ताई जी ने कहा,

“चौबीस वर्ष क्या पूरे जीवन साधना करता रह। मुझे क्या फर्क पड़ता है? मैं तो सिर्फ इतना चाहती हूँ कि तुम मेरे पास बने रहो।

मुझसे कभी दूर न जाना।" ताई जी ने आश्वस्त होते हुए कहा। फिर कुछ देर सोचती रहीं। अपनेआप में डूबे रह कर ही वे अचानक पुलक उठी, शायद मन में कोई स्फुरणा जगी थी। श्रीराम को पुकारा और उसी पुलक के साथ कहने लगीं, "दीपक अखण्ड रखना है। उसका घी कब तक चलता है, कब नया घी भरना है। यह ध्यान रखने के लिए पूरे समय की निगरानी चाहिए। मैं नहीं कर सकूँगी, यह निगरानी।" श्रीराम ताई जी की बात गौर से सुन रहे थे और उनके चेहरे पर छाई पुलक भी निहार रहे थे। ताई जी कुछ पल रुकी और कहने लगी, "अब तुम शादी लायक भी हो गये हो, ब्याह कर लो। घर में बहू आ जाएगी, तो वह अखण्ड दीपक का भी ध्यान रखेगी। मुझे भी सहारा होगा।" श्रीराम ने कुछ नहीं कहा। उनके मौन को माँ ने स्वीकृति माना । वे कुछ कहते तो अपने अधिकार का उपयोग करने की बात भी मन ही मन तय कर रखी थी लेकिन वह स्थिति नहीं आई। उसी दिन ताईजी ने अपने सगे सम्बन्धियों को उपयुक्त कन्या बताने के लिए कहना शुरू कर दिया। ताई जी

क्या कर ही हैं, इस बात से सर्वथा अनजान रहते हुए श्रीराम आगे की व्यवस्थाओं के बारे में सोचने लगे।

माँ से बातचीत के बाद वे बाड़े में गये और एक कपिला गाय को सेवा के लिए चुन लिया। इस चुनाव में कपिला गाय के दूध से बने घी और मठे का ही उपयोग कराने का निश्चय भी था। कपिला गाय का गोबर इकट्ठा किया। उससे पूजा कक्ष को लीपा । माँ ने देखा तो कुछ नहीं कहा, अन्य दिनों में श्रीराम कोई काम अपने हाथ से करते तो रोक लेती थीं। आज चार पाँच घण्टे की पूजा के बाद दादा गुरुदेव से मिलने और चौबीस वर्षों की साधना का व्रत लेने की बात ने कोई हस्तक्षेप करने से रोक दिया। जानती थी कि श्रीराम के हाथ से लेकर पूजा कक्ष को सँभालने की कोशिश करेंगी तो पुत्र राजी नहीं होगा। दो तीन बार रुक कर देखा, किसी तरह के सहयोग की मांग उठने की आस में ठिठकी भी रहीं। लेकिन श्रीराम पूजा कक्ष की व्यवस्था में इस तन्मयता से जुटे रहे जैसे समाधि लग गई हो। कौन आ रहा है, कौन जा रहा है, क्या कर रहा है? उन्हें कोई सुध नहीं थी।

दीपक को अखण्ड रखने का संकल्प करने के बाद बाती की प्रतिष्ठा एक बड़ें दीये में कर दी गई थी। उस दिन पूरे समय ध्यान रखा, अभ्यास के बाद बहुत ज्यादा चिंता नहीं करनी पड़ी। वसंत की उस शाम भी श्रीराम ने और दिनों की अपेक्षा संध्या पूजा में ज्यादा समय लगाया। करीब दो घंटे तक जप में बैठे रहे।

वह सुबह और शाम उनके अपने जीवन में ही नहीं जगत् के इतिहास में भी एक नया पन्ना लिख गई।

इन्ही दिव्य शब्दों के साथ इस अध्याय का समापन करते हैं।

श्रीराम महामना मालवीय जी से प्रेरित हुए।

चेतना की शिखर यात्रा 1 चैप्टर 7

परम पूज्य गुरुदेव और मालवीय जी के घनिष्ठ सम्बन्ध से हम सब भलीभांति परिचित हैं। आज का ज्ञानप्रसाद इन्ही संबंधों को दर्शा रहा है।

मालवीय जी सदैव अस्पृश्यों को दूसरे वर्गों के समान अधिकार देने के पक्ष में थे। उनके अनुसार साधना, स्वाध्याय के क्षेत्र में भी छा गये ऊँच-नीच ने हिन्दू समाज को बुरी तरह खोखला किया था। कलकत्ता अधिवेशन में उपजी कटुता को शांत करने के बाद वे राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार करते हुए जगह-जगह घूमे। राष्ट्रीय आन्दोलन को गति देते हुए वे समाज सुधार संबंधी कार्यक्रमों को भी गति देते रहे । उनके व्याख्यानों में अछूतों के उद्धार, स्त्रियों की दशा सुधारने और सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन करने की प्रेरणा रहती। शूद्रों का शास्त्र अधिकार का मुद्दा भी इन व्याख्यानों का विषय होता। सन् 1927 में उन्होंने एक साहसिक कदम उठाया

और प्रयाग में जातपात का विचार किये बिना सभी वर्ण के लोगों को मंत्र दीक्षा दी। मालवीय जी के इस कदम की बड़ी आलोचना हुई, प्रबल विरोध भी हुआ लेकिन उन्होंने कोई चिंता नहीं की। वे शाँत अविचल और दृढ़ता से अपने काम में जुटे रहे । कलकत्ता, नासिक, पुणे, काशी आदि स्थानों पर भी सामूहिक मंत्र दीक्षा के कार्यक्रम हुए। विरोध, समर्थन, सराहना आदि की मिली-जुली प्रतिक्रिया होती रहती थी।

प्रयाग में सामूहिक दीक्षा देने से कुछ माह पूर्व मालवीय जी आगरा आए थे। मार्गदर्शक सत्ता से साक्षात्कार और महापुश्चरण साधना आरंभ करने से पहले ही श्रीराम सामाजिक गतिविधियों में रुचि लेते रहते थे।जब भी श्रीराम को मालवीय जी के बारे में कोई सूचना मिलती तो वह बहुत ही ध्यान से सुनते, पूरी जानकारी जुटाते और सोचने लगते कि समाज अनुष्ठान में किस तरह सहयोग कर सकते हैं। श्रीराम को जब   पता चला कि मालवीय जी आगरा आए हुए हैं तो उन्होंने तुरंत वहाँ जाने की ठान ली। दो-तीन दिन में लौट आने की बात कह कर वे चल दिये। मालवीय जी आगरा के

हिन्दू सभा भवन में ठहरे थे। वस्तुतः वह सेठ गिरधर दास का मकान था जो उन्होंने हिन्दू सभा की गतिविधियों को चलाने के लिए दे दिया था। सामाजिक उपयोग में आने के कारण ही उसका नाम “भवन” हो गया था।

मालवीय जी ने सभा भवन में ही कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि बौद्ध, जैन और सिक्ख सभी विशाल हिन्दू जाति के अंग हैं। गाँव-गाँव में सभाएँ स्थापित की जाएँ और मानवता की गिरी हुई दशा को उठाने का प्रयत्न करें, जिन्हें हम अछूत कहते हैं, वे भी हमारे ही भाई हैं, उनसे प्रेम का व्यवहार करें,उनकी अवस्था सुधारने पर ध्यान दें, उन्हें अपनाएँ। मालवीय जी ने अपने संबोधन में जहाँ-तहाँ पाठशालाएँ और अखाड़े खोलने की प्रेरणा भी दी । अखाड़े खोलने के बारे में उन्होंने कहा कि हमें शरीर से भी मजबूत बनना चाहिए।

“अपने भीतर शक्ति होगी तभी बाहरी और भीतरी दोनों तरह के शत्रुओं से लड़ सकने में समर्थ होंगें। बलवान शरीर में ही बलवान

आत्मा का निवास होता है। मन को बलवान बनाने के लिए पूजा-पाठ,ध्यान,जप और शास्त्रों का अध्ययन-मनन करें।”

समाज का नया गठन

मालवीय जी के प्रवचनों में टूटे-फूटे जीर्ण-शीर्ण हिन्दू समाज को फिर से गठित करने पर ज़ोर रहता था। निजी चर्चाओं में भी वे अछूतों के उद्धार की बात करते थे। सभा भवन में व्याख्यान पूरा होने के बाद वे कार्यकर्ताओं से बात करने लगे। किसी ने पूछा, “अछूतों के उद्धार का आपका विचार क्या राष्ट्रीय आंदोलन से अलग नहीं है। इस कार्यक्रम पर ज़ोर देंगे,तो राष्ट्रीय आन्दोलन से लोगों का ध्यान बँटने लगेगा। फिर हम अपने मूल उद्देश्य को भूल जायेंगे। मालवीय जी ने कहा मूल उद्देश्य क्या है? प्रश्न कर्ता ने उत्तर दिया “स्वतंत्रता।” उन्होंने फिर पूछा, “स्वतंत्रता किस लिए?” प्रश्न कर्ता भी जैसे पूरी तैयारी से आया था, स्वतंत्रता इसलिए कि हम दुनिया में सिर ऊँचा उठा कर चल सकें,अपने सम्मान की, अपने गौरव की रक्षा कर सकें,उसे बढ़ाएँ।” मालवीय जी ने इस उत्तर से

प्रश्नकर्ता का मानस समझ लिया। उन्होंने बात वहीं से आगे बढ़ाई और कहने लगे, “सम्मान और गौरव किसी एक व्यक्ति का नहीं बल्कि पूरे देश और समाज का। हमें स्वतंत्रता आत्म सम्मान के लिए चाहिए। हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि अपने ही लाखों-करोड़ों भाइयों की गरिमा रौंदते रहने से अपना आत्म सम्मान प्राप्त नहीं हो जाएगा। उनके सम्मान और गरिमा की प्रतिष्ठा करते हुए ही हम पूरे राष्ट्र का गौरव लौटा सकेंगे।

मालवीय जी का व्याख्यान सुनने के बाद श्रीराम भी सभागार में आ गए थे। उन्होंने मालवीय जी को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गये, अन्य लोग भी बैठे थे, अधिकतर युवा कार्यकर्ता ही थे। हर किसी ने अपना परिचय दिया। श्रीराम अपना परिचय देने लगे तो एकाध पंक्ति सुनने के बाद ही मालवीय जी को जैसे कुछ याद आया। पंडित रूपकिशोर के साथ वर्षों पहले काशी आए उस बालक और बालक से संबंधित घटनाएँ स्मृति में उभर आईं। यह भी याद आ गया कि बालक के होनहार होने का आभास तभी हो गया था और आशा भी बंधी थी कि यह आगे चल कर देश और समाज की

कुछ विशिष्ट सेवा करेगा। वहाँ उपस्थित किसी कार्यकर्ता ने छपको माँ (अछूत) का जिक्र छेड़ दिया। वह कहने लगा कि यह बालक गाँव की एक बीमार अछूत स्त्री की सेवा करने और इस कारण कुछ समय तक प्रताड़ित रहने का दंड भुगत चुका है। मालवीय जी ने वह घटना स्वयं श्रीराम के मुँह से सुनी और पूछा कि सेवा के समय मन में क्या भाव उठते रहे, सब कुछ सुनने के बाद उन्होंने श्रीराम की पीठ थपथपाई और कहा कि आगे चलकर तुम्हें और भी चुनौतियों का सामना करना है। समाज सुधार और राष्ट्रीय आंदोलनों पर चर्चा में ही समय बीत गया। प्रत्यक्ष रूप से कोई महत्त्वपूर्ण चर्चा नहीं हो सकी लेकिन उपस्थित लोगों, स्वतंत्रता सेनानियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं में जो बातचीत हुई उसे सुनने का मौका मिला। उस बातचीत से श्रीराम को अपना पक्ष निर्धारित करने में सहायता मिली। उधर लोगों की बातचीत चल रही थी, इधर वे निश्चित कर रहे थे कि आँवलखेड़ा पहुँच कर क्या करना है? आँवलखेड़ा पहुँचे तो बालसेना की बैठक बुलाई,आगरा यात्रा के बारे में बताया,सभी साथियों को घटनाओं के हवाले से

बताया किआगरा में छावनी होते हुए भी लोग कैसी हिम्मत और निडरता से लड़ रहे हैं। छावनी में फौजी रहते हैं। सामान्य स्थिति के लोग फौज़ वालों से डरते तो हैं लेकिन युवकों में जोश है । वे मुकाबला करने के लिए तत्पर रहते हैं। रामप्रसाद नामक किशोर ने उत्साह में भर कर कहा- हम भी तैयार रहते हैं श्रीराम। हम भी किससे डरते हैं। देखा नहीं कि उस मोटे अफसर और काले फौजियों को कैसा खदेड़ा था। श्रीराम ने कहा वह गाँव की बात थी। छावनी में मुकाबला करना बहुत बड़ी बात है। रामप्रसाद ने इस उलाहने का प्रतिवाद किया। उसे लगा कि आगरा के युवकों की तुलना में अपनेआप को जैसे कम आंका जा रहा है। उसने कहा आप कैसे कह सकते हैं? आगरा में आपने ही एक मोटे अफसर का सिर नहीं फोड़ दिया था और सभी रामप्रसाद की भावनाओं से सहमत हुए।

आइए जाने इस घटना के बारे में:

घटना सन् 1923 की है, श्रीराम केवल 12 वर्ष के थे और आगरा गए हुए थे। वहाँ एक अँगरेज फौजी अफसर को किसी युवती से

छेड़छाड़ करते देखा। उस अँगरेज ने युवती को रौब से अपने पास बुलाया। वह समझदार थी। उसे अंदाजा हो गया कि अँगरेज अफसर की मंशा क्या है। वह अफसर के पास जाने के बजाय तेजी से पग उठाते हुए आगे बढ़ने लगी। अफसर उसकी तरफ झपटा तो युवती के साथ जा रहे युवक ने पूछा क्या बात है। ऐसा पूछना अफसर की निगाह में अपराध था जिसका दण्ड दिया ही जाना था। युवक की पीठ पर उसने बंदूक का कुंदा मारा और नीचे गिरा दिया। उसे गिरा पड़ा छोड़कर अंगरेज युवती के पीछे दौड़ा और वह डरकर भागी। गोरा उसके पीछे लपका। श्रीराम किसी दूकान पर खड़े देख रहे थे। उनके मन में जबर्दस्त आक्रोश उबल रहा था। गोरे अफसर के साथ और भी बहुत से लोग थे जो यह सब चुपचाप देख रहे थे।12 वर्षीय बालक श्रीराम ने देखते- देखते कुछ ही पलों में तय कर लिया कि क्या करना है। दुकान पर दरवाज़ा रोकने वाला पत्थर उठाया और युवती का पीछा कर रहे अँगरेज अफसर पर साधकर ऐसा निशाना मारा कि चोट से वह लड़खड़ा कर गिर गया, विलाप करता हआ उठा लेकिन उसके पाँवों में जान नहीं थी।

वह लड़खड़ाता चल रहा था, चीखता-चिल्लाता रहा और लोग अब भी मूक दर्शक बने देखते रहे। किसी ने नहीं बताया कि पत्थर किसने फेंका था। वह लोगों को डराता-धमकाता रहा लेकिन कोई कुछ नहीं बोला। युवती इस बीच किसी सुरक्षित स्थान पर छुप चुकी थी। अंग्रेज अधिकारी वापस लौट गया।

बाल सेना के सदस्यों को यह घटना इसलिए भी याद थी कि इसके बाद ही उन्होंने किशोरों को संगठित करने का विचार किया था।

मालवीय जी से मिलकर लौटने के बाद श्रीराम और सक्रिय होने की योजना बनाने लगे। कुछ कार्यक्रम तय किये। साधना का क्रम अपने ढंग से चलाने और गुरुनिर्देशों का पालन करना उनकी प्राथमिकता थी।

परम पूज्य गुरुदेव का प्रथम विवाह और पत्नी सरस्वती देवी का निधन।

चेतना की शिखर यात्रा पार्ट 1 चैप्टर 7

इस चैप्टर को compile करने के लिए हमने बहुचर्चित पुस्तक "चेतना की शिखर यात्रा पार्ट 1 चैप्टर 7 एवं अन्य कईं ऑनलाइन sources की सहायता ली है। इस ज्ञानप्रसाद में परम पूज्य गुरुदेव की प्रथम पत्नी आदरणीय सरस्वती देवी के साथ विवाह, ताई-गुरुदेव संवाद, गुरुदेव- सरस्वती देवी संवाद बहुत ही संक्षेप में वर्णित किये हैं। लेख का दुःखद अंत सरस्वती देवी के निधन के साथ होता है।

गुरुदेव अपनी मार्गदर्शक सत्ता के निर्देश अनुसार नियत कार्यों में जुट गये थे। जौ के आटे से बनी रोटी और गाय के दूध से बने मठा का प्रबंध तो ताई (गुरुदेव माँ को ताई कहते थे) कर ही देती साथ में अखंड दीप में घी वगैरह डालना और देखभाल भी माँ ही करती। माँ को तो एक ही रट लगी थी कि श्रीराम का विवाह हो

जाए। बेटे का स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेना ,पोस्टर वगैरह चिपकाने,रात-रात देर तक घर से बाहिर रहना अच्छा नहीं लगता था। कौन माँ नहीं चाहेगी कि उसके बेटे की गृहस्थी जल्दी से जल्दी बस जाए। उन दिनों लड़के की 16 -17 वर्ष की आयु marriageable age समझी जाती थी और कन्या अगर 8 -10 वर्ष की हो जाए तो समझा जाता था कि वह बहुत सयानी हो गयी है। अगर यह आयु निकल गयी तो फिर किसी से भी उसका विवाह कर देते थे।

माँ ने अपने रिश्तेदारों, सगे सम्बन्धियों को श्रीराम के लिए लड़की खोजने के लिए कहा। एक दो जगहों से रिश्ते आए भी।

माँ को इस प्रकार अधीर होते देख

श्रीराम बोले: अभी क्या जल्दी है माँ ? इस आयु में विवाह करना धर्म के विरुद्ध होगा।

माँ ने कहा: तुम्हारी उम्र के सभी लड़कों का विवाह हो गया है, तुम भी करो।

श्रीराम ने कहा, अभी कुछ समय रुक जाओ,माँ।

माँ ने पूछा: कितनी देर?

श्रीराम ने उत्तर दिया: यही कोई एक वर्ष भर।

माँ ने जब कारण पूछा तो

श्रीराम कहने लगे: मालवीय जी महाराज कहते हैं कि लड़कों का विवाह 16 वर्ष की आयु से पहले नहीं होना चाहिए। ठीक तो यही है कि 20-22 वर्ष में होना चाहिए पर 16 वर्ष की मर्यादा तो निभानी ही चाहिए।

मालवीय जी का सन्दर्भ सुन कर माँ चुप हो गयी और पूछा: कन्या की उम्र कितनी होनी चाहिए।

श्रीराम ने उत्तर दिया: कम से कम 12 वर्ष, हम जानते हैं कि आपको अखंड दीप और गो सेवा के लिए बहू की ज़रूरत है पर शास्त्र की मर्यादा का पालन भी तो होना चाहिए।

ताई को इसके आगे कोई तर्क नहीं सूझा। फिर सोचकर बोलीं :
”लड़की तो देखी जा सकती है न ?

श्रीराम ने कहा: वह सब आप देखो, लड़की आप को चाहिए,आप देखें और तय करें।

मालवीय जी ने इस बाल विवाह की प्रथा के विरुद्ध बहुत काम किया है। बाल विवाह में लड़का -लड़की दोनों जवानी से पहले ही बूढ़े हो जाते हैं। श्रीराम ने विवाह की सम्मति इस कारण दी थी कि साधना सहचरी बन सके, न कि सामान्य लोगों की तरह घर-गृहस्थी बसाने के लिए या परिवार बढ़ाने के लिए।

साधना सहचरी का आगमन:

सितंबर 1927 में श्रीराम ने 16 वर्ष की आयु पूरी की, ननिहाल पक्ष से बरसौली (अलीगढ) से पंडित रूपराम शर्मा की कन्या का रिश्ता आया, नाम था सरस्वती देवी। ताईजी वधू देखने गयी। बरसौली पहुँच कर उन्होंने वधू को पूछा, “गो सेवा कर लेती हो बेटी।” सरस्वती ने लज्जा के मारे मुंह नीचे कर लियाऔर कुछ नहीं

बोली। रूपराम जी ने कहा, “बिल्कुल ठीक प्रश्न किया है आपने, गो सेवा के इलावा सरस्वती को कुछ भी अच्छा नहीं लगता ” ताई ने और कुछ नहीं पूछा। उनका मानना था कि लड़कियां किसी भी वातावरण में ढाली जा सकती हैं। ससुराल में परायापन ही बिगाड़ देता है। रूपराम जी अपने कुछ रिश्तेदारों के साथ आंवलखेड़ा श्रीराम को देखने आए। पैतृक सम्पदा की कोई कमी न थी। श्रीराम की गो सेवा और पूजा पाठ प्रवृति और निष्ठा तो उनको बहुत ही पसंद आई। रूपराम जी को पूजा कक्ष बहुत ही पसंद आया और कहने लगे हमारी बिटिया को भी पूजा पाठ बहुत पसंद है। रूपराम जी को भी श्रीराम का स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेना पसंद नहीं आया, उन्होंने कहा, “यह बड़ा ही जोखिम का काम है अगर कुछ हो गया तो बिटिया क्या करेगी।” इस पर ताई ने कहा, “होने को तो कुछ भी,कहीं पर भी हो सकता है,इसमें मालवीय जी और गाँधी जी का साथ है। ”

ऐसा कहने पर रूपराम जी को सांत्वना मिली और उन्होंने अपनी आपत्ति वापिस ली और श्रीराम को अपना जामाता बनाना

स्वीकार कर लिया। सारी रस्में जल्द ही सम्पन्न कर ली गयीं और कार्तिक पूर्णिमा को 12 व्यक्ति बारात लेकर आए और बहुत ही सादे समारोह में विवाह सम्पन्न हुआ। रूपराम जी बहुत ही समृद्ध थे एवं कई गांवों को एक साथ भोजन करवा सकते थे पर विवाह से पहले ही ताई ने यह बात स्पष्ट कर दी थी कि कोई फिज़ूल खर्च न किया जाए। दहेज़ में दो गायें और वर वधू को दो -दो जोड़े कपड़े दिए गए थे। शास्त्रों में ऐसे विवाह को "ब्रह्म विवाह" कहा जाता है।

ब्रह्म विवाह को गूगल सर्च के अनुसार आदर्श विवाह की संज्ञा दी है- ऐसा विवाह जिसमें दोनों पक्ष राज़ी हों,कोईं दहेज़ न लिया जाए और सारे संस्कार शास्त्रों के अनुसार सम्पन्न किये जाएँ।

आंवलखेड़ा आकर विवाह संस्कार और अन्य रस्म रिवाज़ पूरे करने में चार दिन लग गए थे। इस अवधि में निर्धारित जप पूरा न होने के कारण तीन दिन श्रीराम ने और कोई काम नहीं किया। स्नानादि के इलावा पूजा गृह में से बिल्कुल बाहिर नहीं निकले। ऐसी थी बालक श्रीराम की (हमारे गुरुदेव) की संकल्प शक्ति। चौथे दिन

जप पूरा होने के बाद सहधर्मिणी की ओर देखा। वधु बनकर आई सरस्वती प्रणाम तो प्रतिदिन कर लेती थी पर चरण स्पर्श का सौभाग्य आज चार दिन के बाद ही मिला था क्योंकि श्रीराम को जप संख्या की चिंता थी। जब भी कभी किसी काम से पूजागृह से बाहर आए तुरंत ही काम करके अंदर चले जाते।

सरस्वती ने आकर चरण स्पर्श किया और नीचे धरती पर बैठ गयी। श्रीराम ने कहा, ”नीचे मत बैठो।” उन्होंने आसन बिछाया और आसन पर बिठाया और फिर पूछने, “लगे यहाँ सब ठीक लग रहा है न, कोई असुविधा तो नहीं है। हमारे भाग्य में आपका दम्पति होना लिखा था सो हो गया लेकिन आगे चल कर बहुत ही कष्ट उठाने पड़ सकते हैं। भगवान ने हमें अतयंत आवश्यक कार्य सौंपे हैं। हम घर गृहस्थी को ठीक प्रकार संभाल न पाएं, तुम पर भी ध्यान देने में चूक हो जाये इसके लिए मन को तैयार रखना। सरस्वती ने कहा, “पिताश्री ने हमें विदा कर दिया, यह भी तो भगवान की इच्छा ही है। हमें नहीं पता क्या कष्ट आने वाले हैं। अपना धर्म निभाएं यही सबसे बड़ी प्रसन्नता है।” श्रीराम ने पूछा, “क्या है आपका धर्म?”

उधर से उत्तर आया, “आपके चरणों की सेवा करना। आप तपस्वी हैं, भगवान के प्रिय हैं। यह हमारा सौभाग्य है किआपके रूप में हमें अपने आराध्य मिल गए।” पत्नी से ऐसा आश्वासन सुन कर श्रीराम के मन का बोझ कुछ कम हुआ। वह तो सोच रहे थे कि मुझ जैसे पति को निभाना बहुत ही कठिन होगा।

मित्रो हम इन अविस्मरणीय पलों का एक newsreel की शक्ल में रूपांतरण करने का प्रयास कर रहे हैं। हर छोटी से छोटी घटना का वर्णन करना अपना धर्म समझते हैं ताकि जो भी इनको पढ़े उसे अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त हो।

श्रीराम और सरस्वती बातें कर रहे थे तो सामने से ताई जी आ रही थीं। ताई जी को आता देखते ही नववधू उठ कर खड़ी हो गयी। ताई ने बहू के माईके जाने की बात की। श्रीराम बिना कुछ कहे बाहर चले गए और अपनी बाल सेना के सदस्यों को ढूंढने लगे। विवाह के कारण वह भी इधर उधर हो गए थे।

सरस्वती देवी का देहांत:

सरस्वती घर का सारा काम करती और श्रीराम का हाथ भी बटाती। जब आंवलखेड़ा से मथुरा आ गए तो स्वतंत्रता संग्राम में श्रीराम तो दिन रात व्यस्त रहते। सरस्वती सारा दिन घर का काम भी करती,अखंड ज्योति पत्रिका में भी अपना सहयोग देती।अधिक काम से थकावट सी भी महसूस होने लगी। आराम की आवश्यकता होने पर भी काम करती रहती। इसी बीच उन्हें ज़ोरों की खांसी उठने लगी। जब श्रीराम को इतनी ज़ोर की खांसी का पता चला और इलाज करवाया गया तो पता चला कि उन्हें क्षय रोग (TB) है। उन दिनों इसका इतना उपचार नहीं था। मथुरा में कोई अच्छा उपचार नहीं था। पास वाले कस्बे हाथरस में एक चिकित्सा केंद्र का पता लगा तो श्रीराम तीनो बच्चों ओमप्रकाश ,दया और श्रद्धा को ताई के पास छोड़ कर सरस्वती को हाथरस ले गए।

हमने गूगल सर्च में इन बच्चों के बारे में जानना चाहा पर केवल ओमप्रकाश जी का ही पता चला। उनका 2019 में देहांत हुआ।

सरस्वती देवी का करीब दो मास इलाज चला,15 दिन तो चिकित्सा केंद्र में ही रही। श्रीराम ने पूरी तरह सेवा की। कपडे भी धोते ,दवाई भी देते,तीमारदारी भी करते। इलाज के बाद सरस्वती देवी मथुरा आ गयी ,दवाइयां और खाने के निर्देश का पूरी तरह पालन करने की सलाह दी गयी।

1942 में परिवार पर जैसे वज्रपात हुआ हो। सरस्वती देवी एकदम बीमार हो गयी। हाथरस से आने के बाद ठीक ही थी सारे काम कर रही थी। अखंड दीप की देखभाल करना ,अखंड ज्योति पत्रिका पर लेबल लगाने , गायत्री आरोग्य केंद्र की औषधियों की पिसाई इत्यादि सब कार्य कर ही रही थी । पर अचानक ही स्वास्थ्य कैसे बिगड़ गया किसी को कुछ नहीं अंदाज। दोपहर को मामूली सी तकलीफ हुई वह भी कोई चिंताजनक न थी, पेट दर्द हुआ तो किसी को बताया ही नहीं। दो दिन बाद जब दर्द बहुत तेज हुआ तो श्रीराम को बताया। तीसरे पहर दर्द और तेज हो गया। श्रीराम वैद धनीराम को बुला कर ले आए। उनके बारे में यह प्रसिद्ध था कि रोगी से पूछे बिना नाड़ी देख कर रग-रग बता देते थे। उन्होंने

बताया कि पेट में एक फोड़ा हो गया हैं और जल्द ही फूटने वाला है। अब ईश्वर स्मरण के इलावा कोई उपाय नहीं है , इनकी विदाई की तैयारी करें। चिकित्सा के नियम अनुसार अशुभ आशंका व्यक्त करना अनैतिक है पर श्रीराम के करीबी होने के कारण धनीराम जी उनको अँधेरे में नहीं रखना चाहते थे। इतना अशुभ समाचार सुन कर परिवार में सन्नाटा सा छा गया। तीनों बच्चों की मनोदशा का अनुमान ही लगाया जा सकता है। श्रीराम ने सभी को संभाला। वैद्य जी भी विचलित हो गए ,श्रीराम कहते, “अगर आप भी विचलित हो जायेंगें तो कैसे चलेगा।” श्रीराम ने सरस्वती को पूछा, “कैसा लग रहा है ? सब ठीक हो जायेगा, चिंता न करें। रातके नौ बज गए होंगें ,ताई जी बच्चों को संभाल रही थीं। श्रीराम सरस्वती के बिस्तर के पास कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। बीच-बीच में उनको देख लेते। रात के 11 बजे का समय होगा सरस्वती को पेट में ज़ोर से दर्द हुआ,वह उठीं और पूछने लगी, “ओम ,दया और श्रद्धा कहां हैं। श्रीराम ने कहा, “सो रहे हैं।” थोड़ा उठीं और कहने लगीं, “ताई को प्रणाम करने को मन हो रहा है।” सुन कर साथ वाले कमरे से ताई

आ गयीं और सरस्वती ने चरण स्पर्श के लिए उठने का प्रयास किया लेकिन उठ नहीं पाईं। श्रीराम को कहने लगी, “आपसे क्या कहूं,अगर कोई अमर्यादा हो गयी हो तो क्षमा करना।” कुछ रुक कर बोली, “इन बच्चों को कभी भी माँ की कमी न होने देना ,यह तीनो बच्चे माँ के भरोसे ही हैं। यही उनके अंतिम शब्द थे।

मित्रो सरस्वती देवी -पूज्यवर की पहली सहधर्मिणी- तीन बच्चों - एक लड़का और दो लड़कियों को छोड़ कर 1942 में इस दुनिया से विदा ले गयीं। लगभग 15 वर्ष के साथ का दुःखद अंत ऐसे हुआ।

****